श्री पुरंदरदास

कीर्त्तन साहित्य माला—प्रथम पुष्प

श्री पुरंदरदास के भजन

मनो वचन में । काय कर्म में
तू तू तू ही है । पुरन्दर विटल ॥

लेखक

बाबुराव कुमठेकर

सत्साहित्य केन्द्र
१७३-डी, कमला नगर
दिल्ली-६

प्रकाशक
सत्साहित्य केन्द्र
१७३-डी, कमला नगर
दिल्ली-६

प्रथमा वृत्ति १९६०
मूल्य
[illegible] रुपये पचास नए पैसे

मुद्रक
सत्यपाल धवन
दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,
दिल्ली-६

समर्पण

अपनी उतरती आयु में भी जिनसे
बच्चों का सा लाड़ पाया
और
जिन्होंने
अपनी आयु के सत्तर वर्ष के पश्चात्
देवनागरी लिपि सीखकर
नित्य की प्रार्थना में
हिन्दी संतोंके नए-नए भजन सुनाए
उन पू० गंगा भाई को
सादर और श्रद्धापूर्वक
समर्पण

बाबुराव कुमठेकर

आभार-प्रदर्शन

इस पुस्तक को जिस श्रद्धा और आत्मीयता के साथ दिल्ली के कर्नाटक संघ ने जनता के सम्मुख प्रदर्शित किया तथा पुस्तक के आवरण-पृष्ठ की साज-सज्जा में श्री सारङ्गन् से और इसमें दिए गए भजनों को दक्षिण–उत्तरी गायन-शैलियों में सर्वप्रथम सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत करने में नई दिल्ली की राष्ट्रीय संगीत-संस्था गान्धर्व महाविद्यालय की ओर से जो हार्दिक सहयोग हमें मिला उसके लिए हम आन्तरिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं।

—प्रकाशक

श्री विनोबा जी का आशीर्वाद

शास्त्री पुरंदरदास के भजनों का रागानुसारी हिंदी अनुवाद हिंदी पाठकों के सामने उपस्थित करके शास्त्री कुमठेकर ने देश की एक अच्छी सेवा की है। इसके साथ अगर मूल पद्य भी नागरी में दिये होते तो दुगनी सेवा होती। लेकिन किताब का दाम भी दुगना होता इस भय से वैसा नहीं किया। उत्तर भारत और दक्षिण भारत को जोडनेवाली जितनी कडियां निर्माण की जा सकेंगी उतना हमारा

सबका कल्याण है। आशा
करता हूं श्री कुमठेकर की ओर से
संतों का साहित्य जगत
स्वागत करेगा।

लोकनागरी लिपी
पडाव फिरोजपुर (पंजाब)
14.2.60

विनोबा का
जय जगत

प्राक्कथन

परब्रह्म-परमात्मा से मिलन की व्याकुलता मानव की अन्तरात्मा में उतनी ही पुरानी है जितना स्वयं मानव। आत्मा-परमात्मा के नित्य एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध का साक्षात्कार तथा तद्रूप-तन्मय होकर उसी में रमते रहना, आध्यात्मिक साधनों का चरम लक्ष्य माना जाता रहा है।

इसी चरम-लक्ष्य को पाने का एक मार्ग सनातन सत्य-स्वरूप परमेश्वर की प्रेमोपासना है। भारतीय दर्शन में इसे भक्ति-योग अथवा भक्ति-मार्ग कहते है। यह मार्ग मानवीय अन्तस्तल में प्रेमातिरेक की तीव्रतम रसानुभूति जगाने और प्रेम की उत्तरोत्तर निर्मलता तथा पूर्ण समर्पण-भाव द्वारा उस चित्त-वृत्ति को स्थायी बनाने की कला एवं विज्ञान है।

ईश्वर को पाने के लिए भक्ति-साधना के इस मार्ग का मूल-स्रोत वेद-उपनिषदों में मिलता है। लेकिन भक्ति-योग का सम्पूर्ण रूप से विकसित स्वरूप सर्वप्रथम श्रीमद्भगवद्गीता में प्रस्फुटित हुआ, जिसमे हमें तत्वदर्शन के साथ-साथ आध्यात्मिक अनुशासन का अपूर्व समन्वय मिलता है।

संस्कृत जानने वालों के लिए पाँचरात्रागम, शिवागम, भागवत आदि ने भक्ति-मार्ग को सरल-सुबोध बनाने में बहुत सहायता की, साथ ही इसको रूप और पद्धतियों की विविधता भी प्रदान की। लेकिन लोक-जीवन तथा जन-मानस में भक्ति की पुनीत धारा प्रवाहित करने का अनन्त श्रेय भारत के साधु-सन्तों को ही है जो प्रेमोन्मत्त होकर प्रभु-भक्ति में डूबे रहते थे। उन्होने ही लिंग, जाति, सम्प्रदाय आदि भेदों से सर्वथा निरपेक्ष रहकर सर्वसाधारण मात्र के लिए आध्यात्मिक जीवन के द्वार खोले। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि ईश्वर प्राप्ति के लिए भगवद्-चरणों में निःसीम निष्काम भक्ति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहिए। भक्ति-भाव में विभोर होकर वे नाचते, गाते, झूमते थे। प्रान्त-प्रान्त की विभिन्न भारतीय भाषाओं में उन्होंने उपदेश दिए, गीत रचे, पर सभी ईश्वर प्रेम की एक ही भाषा में बोले। प्रेम-भक्ति की धारा अनन्त-सलिला, अनन्त-रूपा है। प्राणों के स्पन्दन के साथ-साथ यह बहती है। परिणामतः विभिन्न भारतीय भाषाओं में भक्ति-साहित्य प्रचुर परिमाण में रचा गया, तथा अभिव्यक्ति और अनुभूति की विविधता के बावजूद भक्ति का प्रेरणा-स्रोत एक ही होने से उनमें भावना का अद्भुत सादृश्य है।

अस्तु श्री पुरन्दरदास के कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण भजनों का हिन्दी अनुवाद करके श्री कुमठेकर जी ने प्रस्तुत पुस्तक द्वारा हिन्दी-कन्नड़ दोनों ही की अनन्य सेवा की है। पुस्तक का महत्व इससे और भी बढ़ जाता है कि हिन्दी भजन कन्नड़ के मूल भजनों के ही रागों में गाए जा सकते हैं।

भजनों से पूर्व श्री पुरन्दरदास का जीवन-परिचय, संक्षेप में उनके महत्व-पूर्ण कार्यों का वर्णन, उनके भक्ति पदों की विशिष्टता तथा गुण-मीमांसा के साथ-साथ उनके युग की प्रवृत्ति तथा निजी जीवन की पृष्ठभूमि का निर्देश करने से पुस्तक बहुमूल्य हो उठी है। हिन्दी के विद्वानों को इससे एक ऐसे महान् सन्त संगीतज्ञ एवं भक्त महापुरुष के जीवन का अध्ययन करने का सौभाग्य मिलेगा जिनको कर्नाटक प्रदेश वैष्णव-भक्तों मे सर्वतोपूज्य गुरु मानता है। अतिरिक्त इसके भारतीय अन्तर्प्रान्तीय साहित्य के क्षेत्र में अध्ययन और रचना की दृष्टि से लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक द्वारा एक नवीन धारा को जन्म दिया है।

भारत की समृद्ध एवं विविधतामयी संस्कृति में योगदान देने में कर्नाटक कभी कृपण नहीं रहा। विशेष तौर पर भक्ति और आध्यात्म के क्षेत्र को लेकर श्री डा० आर० डी० रानाडे सरीखे विद्वान लेखक अपनी आगामी पुस्तक 'पाथवे टू गॉड इन कन्नड़ लिटरेचर' में लिखते है कि शिवशरण तथा वैष्णव सन्त अलौकिक आध्यात्मिक अनुभवों को व्यक्त करने की कला में अद्वितीय हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि उत्तर तथा दक्षिण के साहित्य और आध्यात्मिक साधकों के बीच कड़ी-स्वरूप इस सराहनीय प्रयत्न का हिन्दी जगत अवश्य स्वागत करेगा। मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि लेखक हिन्दी तथा कन्नड़ साहित्य-प्रेमियों की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं और निवेदन करता हूँ कि सब सज्जन इस पुस्तक का आदर और गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करें।

६–२–१९६०

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

FOREWORD

The yearning of the individual soul to realise its intimate relationship with the Universal Soul is as old as humanity. Realisation of the real and intimate relationship and the constant and continuous living in it (unitive life) has ever been looked upon as the limit of spiritual achievement.

Love of God or the Highest Reality has been one of the paths leading to that achievement

In India it is called the Cult of Bhakti or Bhakti Yoga. It is the science and art of attaining the highest emotional experience a human being is capable of and of living in that experience through purification of the urge to love and its full dedication to God.

The beginnings of this mystic pathway to God can be traced to the Vedas and the Upanishadas. But it is fully illuminated in the Bhagavadgeeta which is a marvellous synthesis, both of the philosophies and the disciplines, of the spiritual life of man.

So far as those who know Sanskrit are concerned, the Bhagwat, the Pancharatra Agamas and the Shaiva Agamas made the path of devotion easier to understand and gave it a variety of form and shape. But it must be said to the eternal credit of the Saints and Sadhus of India, who lived in God-intoxication, that it was they who popularised the Bhakti Cult. It was they who threw open the gates of spiritual life to the masses, irrespective of caste or creed, sex or occupation. They declared that nothing else was required to attain the Highest except the selfless love of God. They sang and danced in ecstasy, they spoke and wrote in the several languages of India, but always used the same idiom of the love of God. As a consequence, we have a vast Bhakti literature in all Indian languages with a family likeness which indicates a common urge with great variation in degree and expression. Love is a theme which can be varied almost infinitely since it is coeval and co-extensive with the very impulse to live.

Now to refer to this book, Shri Baburao Kumtekar may be said to have rendered signal service, both to Kannada and Hindi by translating into Hindi verse some of the most important songs of Purandardas. He has added to the importance of his work by making it possible to sing the Hindi songs in the same Ragas as those in the original Kannada.

The biographical sketch of Purandardas, a brief assessment of his work, an account of the significant charecteristics of his poetry, the background of the saint's life and of the spirit of the Age all these have added to the value of the book immensely. He has made it possible for Hindi scholars to study a great Kannada Saint, singer and mystic, who is looked upon as the greatest guru of Vaishnava Bhaktas in Karnatak. Further, I can say that the author has struck a new line both in study and presentation so far as inter-lingual studies in Indian languages are concerned.

Karnataka has not been miserly in contributing to the rich and varied culture of Bharat Especially with regard to Bhakti and mysticism, no less a scholar than late Dr. R. D. Ranade has remarked in his forthcoming book, *Pathway to God in Kannada Literature* that the Veerashaiva Sharanas and Vaishnava Dasas have reached the hall-mark in giving expression to spiritual experiences of the highest category.

Let me hope that this very commendable effort of building a bridge between Kannada and Hindi on the one hand, and between spiritual seekers of the North and the South on the other, will get ready response and proper appreciation I have also no hesitation in saying that the author deserves the thanks of the lovers of both the languages and do commend this work for close and careful study by all.

6–2–1960 *R. R Diwakar*

विषय-सूची

प्रस्तावना खंड

भजन

परिशिष्ट

चित्र-सूची

भजनों का अक्षरानुक्रम

कुछ प्राथमिक शब्द

श्री पुरंदरदास के कुछ भजन पहली बार हिंदी पाठकों के सम्मुख आ रहे है। इन भजनों के माध्यम से हिंदी के पाठकों तथा संत साहित्य के अध्येताओं को, कर्नाटक की वैष्णव-मत-परंपरा तथा वैष्णव संत-साहित्य का कुछ परिचय होगा।

कन्नड़ वैष्णव संत-परपरा में विशिष्ट स्थान प्राप्त किए हुए अठारह संत हैं। इनमें श्री पुरंदरदास "दास-श्रेष्ठ' माने जाते है। इनके लगभग २०००-२५०० भजनों मे से १०८ भजन, १ मंगल इस छोटी सी पुस्तिका में दिए जाते हैं। परिशिष्ट में कुछ उगाभोग भी है। मुझे विश्वास है कि पुरंदर-साहित्य की दिशा समझने में ये भजन कुछ सहायक सिद्ध होंगे।

इसके साथ श्री पुरंदरदास के जीवन और कार्य का परिचय भी संक्षेप में दिया है। मुझे विश्वास है कि यह सारी सामग्री हिंदी पाठकों के लिए श्री पुरंदर साहित्य समझने में पर्याप्त उपयुक्त होगी।

फिर भी हिंदी पाठकों और हिंदी संत-साहित्य की कुछ परंपराओं को ध्यान मे रख कर कुछ बातें लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। इससे कन्नड़ वैष्णव संत साहित्य के अध्येताओं को, जो हिंदी संत साहित्य के संस्कारों मे पगे है, अध्ययन की एक दृष्टि, अथवा अध्ययन के लिए कुछ संकेत मिलेगा।

कन्नड़ में "संत" अथवा "संत साहित्य" शब्द प्रचलित नही है। वहां "अनुभाव" "अनुभावी" तथा "अनुभावी साहित्य" ये शब्द प्रचलित हैं। "अनुभाव" का अर्थ "अपरोक्ष ज्ञान" अथवा "परमात्म साक्षात्कार", "अनुभावी" का अर्थ "अपरोक्ष ज्ञानी" अथवा "परमात्म साक्षात्कार किया हुआ सिद्ध पुरुष", "अनुभावी-साहित्य" का अर्थ "ऐसे साधक अथवा सिद्ध पुरुष की साधनावस्था तथा सिद्धावस्था के अपने अनुभव है!'

वहां सुंदर भक्ति-काव्य, लिखने अथवा ज्ञान-चर्चा करने से कोई अनुभावी नहीं कहला सकता' वहां आत्मानुभव की प्रतीति की आवश्यकता है।

कन्नड़ वैष्णव अनुभावी सब भक्त हैं। इस लिए यहां केवल उसी दृष्टि से विचार करना है। किंतु विषय के स्पष्टीकरण की दृष्टि से आध्यात्मिक साधना की कुछ मौलिक बातों का विवेचना अप्रासंगिक नहीं होगा।

यह मानव पंच कोशों से बना है। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय कोश। वैसे ही मानव में पाँच शक्तियाँ निहित हैं। प्राणशक्ति, बुद्धिशक्ति, क्रियाशक्ति, भावशक्ति तथा चिंतन शक्ति। आध्यात्मिक विकास के क्षेत्र में साधकों ने इन भिन्न-भिन्न शक्तियों के सहारे साधना करके अपने को परमात्मा से जोड़ने के पांच मार्ग खोज निकाले है। (१) प्राण-शक्ति के सहारे प्राणयोग अथवा हठयोग मार्ग। (२) बुद्धि शक्ति के सहारे ज्ञान-मार्ग, ज्ञानयोग का पथ। (३) क्रिया-शक्ति के सहारे कर्मयोग अथवा कर्म-मार्ग। (४) भावशक्ति के सहारे भक्तियोग अथवा भक्ति-मार्ग। (५) चिंतन-शक्ति के सहारे ध्यानयोग अथवा ध्यान-मार्ग।

कन्नड़ वैष्णव संतों ने भाव-शक्ति की आधार भूत भक्ति को परमात्म-साक्षात्कार का साधन माना है। श्री पुरंदरदास भी भक्त हैं। इसलिए यहां अन्य मार्गों को छोड़कर भक्ति मार्ग का विवेचन करना है।

भक्ति का आधार मनुष्य की भाव-शक्ति है, तथा भाव-शक्ति का सर्वोच्च विकास है प्रेम! भक्ति के आचार्यों ने कहा है "परमात्मा से अत्यधिक और निस्सीम प्रेम करना ही भक्ति है।" यह प्रेम निष्काम होना चाहिए। अर्थात् निस्सीम और निष्काम।

प्रेम के अनेक रूप हो सकते हैं। जिसके प्रति प्रेम है उसके प्रति, भाव सागर में अनंत प्रकार की और असंख्य भावोर्मियां उठना स्वाभाविक है। जैसे एक जगह पू० विनोबा भावे ने कहा "नित्य नव-नव भावोर्मियों से उदय होने वाली भक्ति ही नवधा भक्ति है।"

किंतु भक्ति पथ के आचार्यो ने पांच भावों का निरुपण किया है। आर्त-भाव, दास्य-भाव, सखा-भाव, वात्सल्य-भाव, तथा मधुरा-भाव। कन्नड़ संत साहित्य के मर्मज्ञों ने इसके साथ ही साथ वैराग्य-भाव, मुमुक्षु भाव, व्याकुल-भाव, शांत-भाव, समर्पण-भाव, दर्शन-भाव, सिद्ध-भाव, आदि का विवेचन किया है।

प्रत्येक भक्त में ये सारे भाव होने चाहिए ऐसा नहीं है। किसी साधक की साधना बरसाती नाले की भांति उमड़-घुमड़ कर हरहरा कर चल सकती है, और किसी की साधना शरद ऋतु की नदी की भांति शांत चल सकती है, और किसी की साधना सरस्वती नदी की भांति गुप्त रूप से चल सकती है, साधक स्वयं भी न जान सके कि मैं साक्षात्कार की साधना कर रहा हूँ। किंतु

यह सारे संबंध आत्मा और परमात्मा के बीच के हैं, भक्त और भगवान के बीच के हैं और वे इतने पवित्र, इतने निकट और घनिष्ठ है कि भक्त और भगवान के बीच में, साधक और साध्य के बीच में तीसरे व्यक्ति अथवा तीसरी शक्ति के लिए यत्किंचित भी स्थान नही है। भक्त और भगवान के बीच में तीसरी एजेन्सी का आना भक्ति भाव की ढिलाई अथवा त्रुटि है, निकटता का अभाव है। अर्थात् कन्नड़ अनुभावी साहित्य में स्वाभाविक रूप मे मधुरा भाव में राधा, वात्सल्य भाव में यशोदा, कौसल्या आदि तथा सखा भाव में गोप आदि का संपूर्ण अभाव है।

अवश्य कृष्ण को देवकी-नंदन, नंद-नंदन, आदि कहा गया है। परमात्मा को इंदिरा-रमण, जानकी-वल्लभ, लक्ष्मीपति आदि कहा है, किंतु इनमें से किसी को अपने और भगवान के बीच नहीं आने दिया है ! गोपियों का उल्लेख है किंतु ईर्षावश। गोपियों को जो भाग्य मिला वह हमें नही मिला। यशोदा ने जगदोद्धारक को अपनी गोद में खिलाया, वह धन्य है, (यह धन्यता हम को कहां ?) कृष्ण के साथी—पर्याय से परमात्मा के सखा भक्त भी आए है किंतु परमात्मा को छेड़ने के लिए। जैसे, बलि की भांति तुमको-नहीं तुझे-दरवाजे पर खड़ा नही किया, वाली की भांति तुझे भला बुरा नहीं कहा, यशोदा की भांति तुझे ऊखल में नही बांधा, अर्जुन की भांति तुझसे अपने घोड़ों की चाकरी नहीं करवाई, भीष्म की भांति तेरा माथा नहीं फोड़ा, भृगुमुनि की भांति तुझे लात नहीं मारी यह मेरी गलती है। मैं तेरी पूजा करते मरा। ग्वालों की भैंस को जैसे लाठी ही गति है (लाठी ही ठीक करती है।) वैसे ही तुझे ऐसे लोग ही गति हैं। (अर्थात् ठीक कर सकते हैं।) आदि

श्री पुरंदरदास के भजनों में, बिना राधा, जानकी, रुक्मिणी के मधुरा भाव हैं। मधुरा भाव का अर्थ सती-पति भाव है। आत्मा सती है, परमात्मा पति है। भक्त सती है भगवान पति है। श्री पुरंदरदास के भजनों में वात्सल्य भाव है किंतु यशोदा नहीं। श्री पुरंदरदास के वात्सल्य भाव में आत्मा माता है, परमात्मा बालक है। भक्त माता है भगवान उसका बालक है। यहां भजनों में भक्त की आत्मानुभूति है, कथा निरुपण नहीं है।

उत्तर के संत साहित्य के संस्कारों में पगे हुए संत साहित्य के अध्येता, कन्नड़ संत-साहित्य की इस परम्परा अथवा इस रहस्य से अनभिज्ञ होने से, अथवा अध्ययन की गहराई के अभाव में तथा राधा, यशोदा, गोप बालक आदि

के अभाव मे, कन्नड़ संत साहित्य में मधुरा भाव का विकास नहीं हुआ, वात्यल्य भाव भी नही दीखता, ऐसे निर्णय करते है किंतु वास्तविकता भिन्न है !

कन्नड़ अनुभावी साहित्य धार्मिक साहित्य नही किंतु आध्यात्मिक साहित्य है। वह राम कथा अथवा कृष्ण कथा का निरूपण नहीं करता किंतु आत्मानुभूति की अभिव्यजना करता है।

यदि राम कथा मे इन भावों की उत्कटता का दर्शन करना हो तो कन्नड़ में "भुवनैक रामाभ्युदय" से (ई० स० ६३०) श्री के० वी० पुट्टप्पा के (ई० स० १६५४) "राम कथा" तक दस बारह रामायण पड़े है। वैसे ही कृष्ण कथा में इन भावों का दर्शन करना हो तो श्री कुमार व्यास का महाभारत अप्रतिम ग्रंथ है। इसके अतिरिक्त दो भागवत भी है। किंतु उनमें "परमात्मोद्रेक के दैवी उन्माद" का वह दिव्य आनंद नही जो अनुभावी साहित्य में है। इस लिए उन सब काव्य ग्रंथों को अनुभावी साहित्य नही कहा जाता।

अस्तु; इन हिंदी भजनो को मैंने अपने कई मित्रो के सामने गाया है। इन मित्रों में से एक मित्र ने मुझे चौंका दिया। उन्होने कहा "यह भक्ति भाव से ओत-प्रोत है। अद्वैत की भाषा मे बोलता है।"

श्री पुरंदरदास मध्वानुयायी है। श्री मध्वाचार्य द्वैत मत के आचार्य हैं। श्री पुरंदरदास ने अपने भजनों में बड़े ही उत्साह से मध्व-मत का प्रतिपादन और प्रचार किया है। इस भजन संग्रह में भी वैसे कुछ भजन हैं। मैंने यह सारी बातें अपने मित्र को समझाई। उन्होंने बड़े आत्म-विश्वास से कहा" श्री पुरंदरदास भले ही मध्व-मत के अथवा द्वैत के प्रधान हो किंतु इनकी भाषा अद्वैत की भाषा है।" मेरे ये मित्र संत साहित्य के साथ ही साथ तत्वज्ञान के अध्येता है।

मैने खूब सोचा। श्री पुरंदरदास के भजनों का दुबारा अध्ययन किया। उन्होंने कई जगह कहा है "अरे पगले ! सोहम् क्यों कहता है दासोहम् कह !" किंतु मध्वानुयायी मुझे क्षमा करें; मैंने ऐसा प्रतीत किया कि द्वैत और अद्वैत की भाषा आचार्यों की भाषा है। दार्शनिकों की भाषा है। ज्ञान की भाषा है, प्रेम की भाषा नहीं। और संत सब प्रेम की भाषा बोलते हैं। ज्ञान की भाषा और प्रेम की भाषा में पटरी नहीं बैठती।

महाराष्ट्र का संत शिरोमणि श्री तुकाराम महाराज भी पहले-पहले अद्वैत के नाम से चिढ़ते है। और अन्त में अद्वैत की भाषा बोलते हैं। "तुकया झाला विठल।" कहते हैं।

मुझे लगता है कि सखा-भाव और मधुरा-भाव ही अद्वैत की भाषा है। हम पराए घर की लड़की को विवाहित करके अपने घरकी बहू बनाकर लाते है। पीहर आते ही वह घरकी रानी बनकर नौकर को आदेश देती है "मेरी साड़ी और इनकी धोती उठा ला!!" वही बहू, जब ससुराल मे कुछ साल बिताती है, उसकी गोद मे बालक खेलता है, तब नौकर से कहती है "हमारे कपड़े उठा ला!!" यह प्रेम की भाषा है! जब भक्त का भगवान से परिचय ही रहता है तब वह "मेरी साड़ी और इनकी धोती" कहता है, घनिष्ठता होने पर "हमारे कपड़े" वाली भाषा बोलता है! प्रेम की इस दुनिया में ज्ञान की अथवा दार्शनिक भाषा बोलना व्यर्थ है। यदि हम प्रेम से उसको गाएगे, तो उसकी टीस को अनुभव करेगे। हमारा हृदय उस भाषा को अनुभव करेगा। इसी विचार से मैंने इस छोटी-सी पुस्तिका में मध्व मत के विषय में, उसके सिद्धांत प्रमेय आदि के विषय में मौन रहना ही उचित समझा! क्योंकि वह ज्ञान की भाषा है।

अस्तु; शायद मै कुछ अनावश्यक और अनधिकार की बातें कह गया। यदि कन्नड़ अनुभावी साहित्य को हिन्दी पाठको के सम्मुख न रखना होता तो ये बातें लिखने की आवश्यकता ही नही पड़ती।

अब भजनोंके अनुवाद के विषय में कुछ बातें कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। मैने इनमे से कई भजनो को अपने मित्रों को गा कर सुनाया था। कुछ मित्रों ने संकेत किया कि कविताओ में अंत्याक्षर का तुक नहीं है। कन्नड़के मूल भजनों में ही अंत्याक्षर का तुक नही है! किन्तु प्रत्येक पंक्ति के दूसरे अक्षर में अवश्य तुक है। कही-कही अत्यन्त आग्रहपूर्वक है! संभवतः यह प्रचलन हिन्दी में नहीं है। हिन्दी का प्रचलन कन्नड़ कीर्तनों में नहीं और कन्नड़ का प्रचलन संभवतः हिन्दी के पिंगल शास्त्र में नहीं!

और; अनुवादक की भी कुछ मर्यादाएं हैं। सर्व-प्रथम मूल के भाव, अर्थ तथा विचारों को अक्षुण्ण रखना अनुवादक का प्रथम-धर्म है। और कविताओं में तो उसके संगीत के माधुर्य को बनाये रखना भी धर्म है! क्यों कि अपने मनसे संगीतबद्ध भावा-भिव्यक्ति ही कविता है। पद्यों में भाव के साथ-साथ संगीत का भी महत्व है। मुझे लगता है कि तुक मिलाना कविता का आत्मगुण नहीं है, और संगीत पद्य का आत्मगुण है। कभी-कभी कवि तुक मिलाने अथवा तुक भिड़ाने की धुन में भाव-प्रवाह को तो मारते ही हैं संगीत-माधुर्य को भी समाप्त कर देते हैं। स्वाभाविक रूप से भाषा के प्रवाह में जहाँ प्रास आते हैं वही काव्य-सौन्दर्य पर्याप्त है।

अर्थात् मैंने इन भजनों के अनुवाद में यत्-किंचित् भी तुक का विचार नहीं किया है। "पद्य की भाषा ही अलग है" यह नही माना है। मूल के भाव, अर्थ, ध्वनि, आदि के साथ, उसकी संगीतात्मकता को अक्षुण्ण रखते हुए सरल, स्वाभाविक, सुलभ बोलती भाषा में, अनुवाद किया है। सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी समझ सके ऐसा प्रयास किया है।

इसके साथ ही साथ मुझे यह भा खुले हृदय से स्वीकार करना है कि मैं संगीत शास्त्र के श्रीगणेश मे भी अनभिज्ञ हूं। भजनों पर जो राग और ताल दिए हैं वे सब मूल भजनों के हैं। किंतु मैं अपनी आयु के सोलहवें साल तक भजनों के वातावरण मे पला हूं। उस वातावरण का उल्लेख मैंने अगले पृष्ठों में किया है। उस समय मैं श्री पुरंदरदास के कन्नड़ भजन जैसे गाता था वैसे ही आज हिंदी भजन गाता हूं। उन दिनों में पचास-पचास तालों के साथ जैसे ताल पकड़ता था वैसे हिंदी भजनों के साथ पकड़ता हूं। कन्नड़ भजनों का पंक्तियों के साथ हिंदी भजनों की पंक्तियों को उलझा कर ताने बाने की भांति बुनकर गाया है। कुछ कन्नड़ मित्रों ने इन हिंदी भजनों के साथ कन्नड़ भजन गुनगुनाए हैं।

इनके राग ताल आदि कर्नाटक संगीत के है। गाने का ढंग वही है। भाषा हिंदी है। शब्द योजना, उच्चारण, ध्वनि आदि भिन्न है। परिणामस्वरूप हिंदी गानों को कर्नाटक संगीत में गाने से उस संगीत-प्रणाली में भी एक नाविन्य तथा कुछ परिवर्त्तन भी आ सकता है तथा उत्तर के संगीतकारों के गाने से भी एक नाविन्य आएगा। प्रयत्नपूर्वक संगीतकार यदि इस दिशा में कुछ साधना करेंगे तो ये तथा ऐसे भजन दक्षिण और उत्तर की संगीत प्रणालियों के समन्वय से एक नई संगीत प्रणाली के निर्माण के साधन हो सकेंगे ऐसी आशा है! गांधर्व महाविद्यालय से ऐसी आशा कर सकते हैं क्योंकि उनकी ऐसी राष्ट्रीय परंपरा है।

मेरा विश्वास है, कि जैसे साहित्य केवल एक राष्ट्र की ही नहीं किंतु समग्र मानव कुलकी भावात्मक एकता का सबल साधन हो सकता है, वह, दक्षिण और उत्तर पूर्व और पश्चिम के बीच खुदी हुई खाइयों को पाटकर "मानव-मानव एक" होने का अनुभव करा सकता है वैसे ही कला, और विशेषकर संगीत उससे अधिक शक्ति के साथ यह कार्य कर सकता है। क्योंकि संगीत हृदय का भाषा है और मानवी जीवन का रहस्य उसके हाथ पैर में नहीं, उसके मस्तिष्क में नहीं, किंतु उसके हृदय में हैं। संगीत का कोई सुर-सुर ही नहीं यदि वह

सुनने वाले के हृदय में टीस न पैदा करें ! और संगीत और साहित्य का मिलन ! अवश्य यह कार्य कर सकता है। यदि भारत के कलाकार इस दिशा में कुछ साधना करें तो वे केवल संगीतकार ही नहीं राष्ट्रीय एकता के कलाकार कहलाएंगे।

मुझे और कुछ कहना नहीं रहा। अंतिम शब्द यही लिखने हैं, मेरी मातृभाषा हिंदी नहीं है। मेरी मातृभाषा कन्नड़ है। परिणामस्वरूप मेरी भाषा में त्रुटियां रहना स्वाभाविक है। उन सब और सब प्रकार की त्रुटियों के लिए हिंदी पाठक मुझे क्षमा करेंगे ऐसी आशा है।

इन भजनों की उपादेयता तथा सुंदरता बढ़ाने में जिन-जिन मित्रों ने उदारता से सहायता दी है उन सबका नाम गिनाकर उनकी उदार सहायता तथा सद्भावना के मूल्यांकन की धृष्टता करने का साहस नहीं होता। उनकी सद्भावना को अपने ही हृदय की संपदा बनाए रखना ही सच्ची कृतज्ञता है।

साहित्य भारती —बाबुराव कुमठेकर

ओक लॉज, नैनीताल

१५-११-५६

श्री पुरंदरदास का जीवन-परिचय

परंपरा

श्री पुरंदरदास के भजनों में अभिव्यक्त होने वाले अनुभवों को भली-भांति समझने के लिए उनके जीवन का कुछ परिचय उपयुक्त होगा।

श्री पुरंदरदास कन्नड़ संत-मंडल मे सर्वमान्य संत है। कन्नड़ भाषा-भाषी प्रदेश की संत-परंपरा बड़ी लंबी है। ऐतिहासिक दृष्टि से दसवी सदी से अठारहवीं सदी तक, अर्थात् नौ सौ साल की यह परंपरा है। इस परंपरा की दो शाखाएं है। पहली वीरशैव संत-परपरा और दूसरी वैष्णव मत-परपरा। कन्नड़ में वीरशैव संतों को शिवशरण अथवा वचनकार, और वैष्णव मतों को हरिशरण, हरिदास अथवा कीर्तनकार कहते है।

ऐतिहासिक दृष्टि से शैव सत वैष्णव संतो से पहले हो गये है। काल-गणना की दृष्टि मे भी वीरशैव संतों का काल पहले आता है। कन्नड़ वैष्णव संत सब मध्वानुयायी हैं, श्री मध्वाचार्य को गुरु मानते है। श्री मध्वाचार्य द्वैत मत के आचार्य माने जाते है—अर्थात् कन्नड़ वैष्णव संत हरिदास सब द्वैत मत के अनुयायी हैं।

श्री मध्वाचार्य के काल के विषय में सदा की भाति विद्वानों में मत-भेद है। मोटे तौर पर श्री मध्वाचार्य का काल ई० स० तेहरवीं सदी माना जाता है। श्री मध्वाचार्य के पश्चात् उनके अनेक शिष्यो ने मध्व-मत का प्रचार किया। उनकी शिष्य-परंपरा में भी दो शाखाएं है। व्यास कूट और दास कूट। "कूट" शब्द कन्नड है। "कूट" का अर्थ मंडल, मिलन, चौक, आदि होता है। व्यास कूट में श्री मध्वाचार्य द्वारा स्थापित मठों के आचार्य आते हैं तो दास कूट में मध्व-मत के संत। व्यास कूट के आचार्यो ने मध्व-मत पर अनेक विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ लिखे हैं और दास कूट के संतों ने लोक-भाषा में अनेकानेक भजन लिखे हैं। व्यास कूट के आचार्यों में से भी श्री नरहरि तीर्थ श्री श्रीपादराय (ई० स० १४८६ के लगभग), श्री व्यासराय (शा० श० १३६६ से १४६१) श्री वादिराज (शा० श० १४०२ से १५२०) आदि अनेक आचार्यों ने भी कन्नड़ में भजन रचे हैं।

वर्तमान समय में निश्चित रूप से प्राप्त आधारों को देखते हुए श्री नरहरि तीर्थ (तेरहवीं सदी का अंत) ही वैष्णव संतों में सर्व प्रथम कीर्तनकार हुए हैं।

वैसे तो श्री अचलानंददास के कुछ कीर्तन मिलते हैं किंतु उनके काल के विषय में विद्वानों में एक मत नहीं है। कुछ विद्वान इनको दसवीं सदी का मानते हैं तो कुछ बहुत आधुनिक मानते हैं। श्री नरहरि तीर्थ ने भजनों की परंपरा प्रारंभ करके दासकूट की जो नींव डाली, उसी परंपरा के महान् संत श्री पुरंदरदास हैं। आगे चल कर श्री पुरंदरदास ने ही दास कूट का संघटन किया और उसको एक विशिष्ट रूप दिया, जिसका प्रभाव आज भी कर्नाटक के जन-जीवन में लक्षित होता है।

श्री व्यासराय अथवा व्यास मुनि—श्री व्यास मुनि का काल शा० श० १३६९ से १४६१ तक का है। इनके पिता का नाम श्री रामाचार्य, कावेरी नदी के तट पर बसा बन्नूर इनका जन्म गांव। गुरु श्री श्रीपादाचार्य। श्री व्यास मुनि विजय नगर के राज-गुरु थे। इन्होंने संस्कृत में भी न्यायामृत, तर्कतांडव, चंद्रिका आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। इनके पथ-प्रदर्शन में विजयनगर के चार राजाओं ने राज्य किया। सुप्रसिद्ध श्री कृष्णदेवराय उन चार राजाओं में अंतिम राजा हुए। ये वृद्धावस्था में उडपी में आकर श्री मध्वाचार्य के मठ के स्वामी बने।

श्री व्यास मुनि केवल विजयनगर के हिंदू राजाओं से ही सम्मानित नहीं थे। मुग़ल सम्राट् बाबर, बीजापुर के अल्ली आदिलशाह आदि मुसलमान बादशाहों ने भी उनका बड़ा सम्मान किया है। श्री पुरंदरदास इन्ही श्री व्यास मुनि के शिष्य थे।

श्री पुरंदरदास—श्री पुरंदरदास के विषय में कर्नाटक की जनता का विश्वास है कि वे "नारदांश संभूत"—अर्थात् नारद के अवतार थे। कन्नड़ संत साहित्य के विद्वान लेखक श्री रं० रा० दिवाकर (रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर) ने श्री पुरंदरदास का जन्म "शा० श० १४०२ माना है।" कन्नड़ के विद्वान् अधिकतर श्री पुरंदरदास की मुक्ति तिथि ही देते हैं जन्म तिथि नहीं। शा० श० १४८६ रक्ताक्षी संवत्सर पुष्य वद्य अमावस्या इनकी मुक्ति तिथि है। आज भी कर्नाटक में तथा जहां कहीं भी कर्नाटक के लोग हों, "श्री पुरंदर पुण्य तिथि" के रूप में इस दिन को मनाते हैं।

वस्तुत: श्री पुरंदरदास के जीवन के विषय में निश्चित स्वरूप की जानकारी बहुत कम ही मिलती है। जनता में प्रचलित चमत्कारों से भरी दंतकथाओं मे कोई खास स्वारस्य नहीं होता। श्री पुरंदरदास का जीवन हरि नाम के कीर्ति-ध्वज का ध्वज-स्तंभ सा है। ध्वज, ध्वज-स्तंभ के आधार से ही आकाश में उड़ता है। सब उसको राष्ट्र का प्रतीक मानकर उसकी गौरव गाथा गाते

हैं। किंतु उसके आधार भूत स्तंभ के विषय में कुछ नहीं जानते अथवा बहुत कम जानते हैं। संतों ने सदैव अपना सिर उठाकर प्रभु भक्ति का कीर्ति ध्वज आकाश में फहराया है। भगवान के गुण गान में हजारों लाखों भजन लिखे हैं किंतु अपने विषय में मौन ही रहे हैं। फिर भी कहीं-कहीं उनके भजनों में आत्मवृत्त पर कुछ गवाक्ष से है। समकालीन लोगों ने भी कभी कुछ लिखा है। तो भी उस परसे संत साहित्य के अध्येता उस जीवन की भव्यता को आंक सकते हैं जैसे दूर से हिमालय के रजत शिखरों को देख कर प्रसन्न होते हैं।

श्री पुरंदरदास, तथा समकालीन अन्य सतों के भजनों में जो कुछ थोडे से गवाक्ष हैं उन परसे ज्ञात होता है कि श्री पुरंदरदास दास-दीक्षा से पहले स्मार्त अर्थात् शैव ब्राह्मण थे। करोड़पति थे। इनके घर को "नवकोटिनारायण" का घर कहा जाता था। विजय नगर के सम्राट् भी इनके ऋणी रहते थे।

इनके पिता का नाम वरदप्प नायक था। इनका नाम शीनप्प नायक था। इनके चार पुत्र और एक पुत्री थी। शीनप्प नायक अत्यधिक कृपण और कठोर थे।

एक बार एक घटना हुई। एक ब्राह्मण इनके पास आया। अपने लड़के के उपनयन के लिए कुछ सहायता मांगने लगा। करोड़पति धनिक नायक ने उसको "कल आने" को कहा। वह कल आया ! कल ! कल !! कल !!! वह कल कभी आज नहीं हुआ। ६ महीने बीते। कृपण धनिक उस याचक को टालने से नहीं थका और वह याचक भी थक कर नहीं टला ! दोनों की लगन एक सी ! आखिर लोभी धनिक की मुट्ठी खुली। उन्होने अत्यंत उदारता से "तांबे का एक पैसा" दे ही दिया !!

ब्राह्मण वह पैसा लेकर वहां से चला और उनकी पत्नी के पास पहुंचा। अपनी सारी राम-कहानी सुनाई। पतिदेव की उदारता भी सुनाई होगी। बेचारी ब्राह्मण देवता की बातो में आ गई। उन्होंने झट अपनी नाक की नथ, जो हजारों की थी, उठा कर दे दी।

वह ब्राह्मण भी बड़ा छलिया निकला। वह पत्नी की नथ बेचने के लिए लोभी पति के पास गया ! पतिने पत्नी की नथ पहचानी। नथ लेकर "अभी अवकाश नहीं है कल आना !" कहते हुए उसको टाल दिया। उस ब्राह्मण के जाने के पश्चात् क्रोध से लाल होकर वे घर आए। पत्नी से पूछा। बेचारी पत्नी ! पति से होने वाले अपमान के भय से आत्म-हत्या करने चली। वह अंदर जाकर विष लेना चाहती थी। वह अंदर गई। विष लेना ही चाहती थीं कि नथ वही सामने है ! उनको आश्चर्य हुआ। चुपचाप नथ लाकर पति के हाथ मे दे दी। नथ

देखकर शीनप्प नायक को और आश्चर्य हुआ। उन्होने वहां से दुकान में जाकर देखा तो नथ गायब !

वे घर आए। पत्नी से उनको सारी बात मालूम हुई। उन्होंने ब्राह्मण की प्रतीक्षा भी की पर ब्राह्मण फिर नही लौटा। शीनप्प नायक को विश्वास हो गया, "वह ब्राह्मण परमात्मा ही था !"

शीनप्प नायक को वैराग्य हुआ। वे घर-बार वैसा ही छोडकर निकल पड़े। इस नश्वर संपत्ति को छोड़ कर शाश्वत सपत्ति की खोज मे वे चले, लक्ष्मी को त्याग कर लक्ष्मीपति को पाने के लिए चले।

उनकी पत्नी ! सीता-सावित्री का आदर्श उनके सामने था। उन्होंने पति का अनुकरण किया। पुत्रो ने माता-पिता का अनुकरण किया। बहन ने भाई का अनुकरण किया। सेवक ने स्वामी का अनुकरण किया। शीनप्प नायक, उनकी पत्नी, चार पुत्र, एक पुत्री, और एक सेवक ! सबके सब वास्तविक संपत्ति की खोज में निकले !

कर्नाटक के करोडों लोगों का विश्वास है कि वह ब्राह्मण दूसरा-तीसरा कोई नहीं था, स्वयं भगवान थे। स्वयं श्री पुरंदरदास भी अपने एक भजन में गाते हैं, "कहां गया री उस विप्र को कहां खोजू री ! मोती की नथ मुक्ति में ब्राह्मण "लो आता हूं कह माय हुआरी" ।।प०।। उस ब्राह्मण के विषय मे कहते है "पंढरपुर के पांडुरंग कहते।" इस भजन से यह भी बोध होता है कि शीनप्प नायक ने पत्नी को शरीर-दंड भी दिया था। वे कहते है "उस दिन नारी को खंभे से बांधा तो मंदरधर हे कह शरण गई। तब बंधन छोड़ के नथ दे दी उसने !"

इस घटना के बाद वे विजयनगर गए। श्री व्यास मुनि इनका वैराग्य देखकर चकित रह गए। उन्होंने शीनप्प नायक को वैष्णव दीक्षा दी। "पुरंदर-दास" नाम दिया। इस विषय में स्वयं श्री पुरंदरदास गाते हैं :

अंकित बिना न रहना कहके
पंकज नाभ श्री पुरंदर विठल का
अंकित दिया कृपासे व्यास राय ने ।।

श्री पुरंदरदास की वैराग्य गुरु उनकी पत्नी थी, जैसे श्री तुलसीदास की वैराग्य गुरु उनकी पत्नी थीं। श्री तुलसीदास कामोन्मत्त थे और श्री पुरंदर-दास धनोन्मत्त थे। जो घटना हुई उस पर श्री पुरंदरदास की प्रतिक्रिया निम्न भजन से स्पष्ट है। वे गाते है:—

हुआ सो भला ही हुआ, हमारे
श्रीधर के भजन की साधन संपत्ति मिली ।।प०।।

इसी भजन में वे गाते हैं—

तंबोरा ताल लेनेमें सिर झुकाकर लजाता था ।

सतीकी संतति अनन्त हो ताल तंबोरा पकड़वाया इसने ॥

उनका यह भजन घटना पर अपनी प्रसन्नता दर्शाने वाला है ।

इस घटना के बाद श्री पुरन्दरदास ने दास-दीक्षा ली और मरते समय तक अर्थात् अपनी आयु के ८४वें वर्ष तक भगवद् भजन गाते हुए भारत भर का भ्रमण किया ।

इस कथा को श्री जगन्नाथदास ने भी अपने भजनों में गाया है । श्रीजगन्नाथ दास के निम्न भजन में इस कथा का निरूपण किया गया है—

दास राया पुरन्दरदास राया प्रति-

वासरमें श्री निवासको दिखा ओरे दयासांद्रा ॥

यह भजन बड़ा लम्बा है । इसके सात छन्द है । उपरोक्त घटना के पश्चात् श्री पुरन्दरदास ने "भिक्षां देहि" की वृत्ति अपनाई । जिसको दक्षिण में "मधुकर वृत्ति" कहते है । इस मधुकरी वृत्ति की अवधूत अवस्था में उन्होने भारत भर का भ्रमण किया । ऐसा भ्रमण करते हुए उन्होंने ४,७६,००० भजन गाए । उन्होंने अपने एक भजन[1] में इन भजनों का निम्न विवरण दिया है ।

राग-मुखारी झंप ताल

बासुदेवकी नामावलिका निर्णय रे

व्यासरायकी दयासे मैंने किया है वर्णन ॥प०॥

केदारसे रामेश्वर तक भूतलके ईश्वरके ।

पादारविन्दके तीर्थक्षेत्रकी, गाथा ।

आदरसे गाई है लक्ष द्विदश पंच सहस्र

वेद शास्त्र पुराण विविध सम्मतिसे ॥१॥

सुलादि षड़दश चतु सहस्र बहु-व्रता

वलिका त्रिशत पच सहस्रमें

श्वेत-द्वीप अनंतासन वैकुंठ

शेषशायीकी महिमा गाई है मैंने ॥२॥

ब्रह्मलोक, कैलास दिक्पालकी

महिमा गाई मैंने अष्टदश सहस्रमें

१. भजन संदर्भ, १६७ पुरन्दरदासर कीर्तने, दूसरा भाग ।

सन्मत अनेक कथा सार मैंने नव दश सहस्र
गाये एकाग्र मनसे तुम जन सारे सुनो रे ।।३।।
आन्हिक गुण जन्माष्टमी एकादशी
निर्णय श्रुति सहित गाये
अनघ अगणित मूर्ति गंडकी शिलके
घन कल्याण षड्दश सहस्रमें ।।४।।
मध्वराय महिमा महागुरु परम्परा प्र-
सिद्ध व्यासराय पर्यंत की
सिद्ध तंत्र सारोक्त तारतम्य ज्ञान
उद्धरण दे के मैं पृथ्वी पर गाता आया ।।५।।
उनका मूर्ति ध्यान उन सबकी कीर्ति-कथा
विवरणसे मैंने कहा विस्तारसे
प्रीतिसे गाया द्विदश पंच सहस्र
भुवनमें गाये बुध जनके समक्ष रे ।।६।।
इति चार लक्ष सप्तदश पंच सहस्र
भजन गाये काम जनककी महिमामें
संतत श्रुति स्मृति सम्मत प्रमाणमें
श्रीमंत पुरंदर विठल व्यास मुनि समक्ष ।।७।।

(इस भजन के रूपांतर मे संगीत का विचार नही किया गया है।)

इस भजन के अनुसार श्री पुरंदरदास ने मधुकर वृत्ति मे रहकर (१) केदार से रामेश्वर तक के क्षेत्र के देवताओं की महिमा में १२५००० भजन,

(२) सुलादि ६४८००,— व्रत, नाम, आदि भजन,

(३) वैकुंठ, श्वेतद्वीप, अनंतासन, शेषशायी महिमा, आदि पर ३५००० भजन,

(४) ब्रह्मलोक, कैलास दिक्पाल आदि पर ८०००० भजन

(५) पुराणोक्त, कथाएं, आदि पर ९०००० भजन

(६) एकादशी आदि व्रत, गुरु परंपरा, मध्वमत का ज्ञान, तारतम्य-ज्ञान आदि पर ६०००० भजन, और

(७) मूर्ति वर्णनादि २५००० भजन गाये हैं।

यह है श्री पुरंदरदास का साहित्यिक कार्य ! यह है उस महापुरुष की देन। किंतु आज कन्नड़ भाषा में अधिक से अधिक २००० भजन उपलब्ध हैं। वैष्णवों

में एक कहावत प्रसिद्ध है कि जब परमात्मा अनंत हाथों से देता है तब मनुष्य दो हाथ से कहां तक लेगा और जब वह अनंत हाथ से छीनता है तब मनुष्य दो हाथों से कहां तक संभालेगा ? किंतु श्री पुरंदरदास के उपरोक्त भजन को देखकर यह कहना पड़ता है—एक कंठ से उस महापुरुष ने जो गाया उसका शतांश भी दो करोड़ हृदय स्मरण नहीं रख सके, दो हाथों से उस महापुरुष ने जो दिया उसके शतांश को भी चार करोड़ हाथ संभाल नहीं सके । यह है हमारी योग्यता !!

कन्नड़ भाषा के कुछ विद्वान यह कहते है कि श्री पुरंदरदास की इस उक्ति में अतिशयोक्ति है ! किंतु स्वप्न में श्री पुरंदरदास से दीक्षित श्री विजयदास भी उपरोक्त बात की गवाही देते हैं । अपने गुरु श्री पुरंदरदास के संकल्पानुसार बाकी बचे हुए २५००० सुलादि गाकर इस शिष्य ने गुरु की संकल्प-पूर्ति की है ! कन्नड़ कीर्तन साहित्य में श्री विजयदास के सुलादि का अत्यंत महत्व का स्थान है ।

हम अपनी अयोग्यता को छिपाने के लिए दो-दो संतों पर अविश्वास कैसे करें ? साथ-साथ पाठक को यह भी जानना आवश्यक है कि श्री पुरंदरदास ने "स्वांतः सुखाय" भी अपने भजन लिखकर नहीं रखे । जैसे हिंदी के श्री सूरदास, श्री तुलसीदास आदि संतों ने अथवा महाराष्ट्र के श्री ज्ञानेश्वर, श्री तुकाराम आदि संतों ने अपनी वाणी को लिपित किया है वैसे उन्होंने नहीं किया । श्री पुरंदरदास का साहित्य श्रुति साहित्य है, कृति साहित्य नहीं । जब वे अपने दैवी उन्माद में मस्त होकर नाचते-गाते चलते थे उस समय किसी ने उन भजनों को हृदयंगम करके लिख रखा होगा ! उनके कुछ भजन इस कथन के साक्षी है ।

दैवी उन्माद में मस्त, भक्ति भाव में पगे श्री पुरदरदास, गले में तंबोरा, हाथ में करताल, पैरों में घुंघुरु, गले में तुलसी काष्ठ की मणि माला, कंधे पर झोली, बगल में लोटा, माथे पर ऊर्ध्वपुंड्र तथा अंगार और अक्षत का तिलक लगाए, नाचते, गाते, अपने परमात्मोद्रेकानंद का वितरण करते-करते, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य को सिखाते-सिखाते, हरि नाम गाते-गाते भारत-भ्रमण करते थे ।

कन्नड़ वैष्णव संतों ने उनके इस परमात्मोद्रेक का सुंदर वर्णन किया है । भक्ति-भाव के मर्मज्ञ, अपरोक्ष ज्ञानी, श्री विजयदास लिखते है, "दोनों आंखों से छलकने वाले आनंदाश्रुओं की पुण्य वाहिनी के पुलकोत्सव में, गद्गद् होकर हरि परवशता में, तुतलाती वाणी से श्री हरि श्री हरि कहते हुए उन्हें—

श्री पुरंदरदास को– नाचते देख कर देवता भी हर्षोन्माद में डुलते थे !"

यह श्री पुरंदरदास के भौतिक जीवन का चित्रपट है। इसके कुछ प्रमाण-भूत चित्र भी उनके भजनों में अपनी झांकी दिखाते हैं। ये महान् संत, मोक्ष मार्ग के पथिक, अन्य लोगों को भी कल्याण पथ दिखाते-दिखाते किसी के घर भिक्षा मांगने गए होंगे। वहां इस अवधूत को देखकर किसी गृहलक्ष्मी ने दर-वाजा बंद कर दिया होगा। तभी वे गा उठे—

राग–मध्यमावति आदिताल*

किवाड़ भिड़ाया क्यों री गंयाली[1]
किवाड़ भिड़ाया क्यों री, अभी सांखल हिलती है ॥प०॥
किए हुए पातक मिटेंगे मान
तूने किवाड़ भिड़ाया क्यों री ॥ अ० प० ॥
रामायण भारत पांचरात्रागम
सार तत्वके बिंदु आएंगे (भीतर) मान तूने ॥१॥
सुंदर घुंघुर पदमें बांध कर
धिमि धिमि धिमि किट नाचते दासको देख ॥२॥
नंद नंदन गोविंद मुकुंदके
सुंदर ध्वनि कानोंमें पड़ेगी मान ॥३॥
हरि शरणोंके पद पद्म युगके
पावन रज गृहमें पड़ेंगे मान तूने ॥४॥
मंगल मूरति पुरंदर विठलके
तुंग विक्रम पद स्पर्श होगा मान ॥५॥

ऐसे ही अन्य अनेक भजन है जो उनके भौतिक जीवन के चित्रपट की पावन झांकियां प्रस्तुत करते हैं। एक जगह यह करोड़पति भिक्षापति बन कर "भिक्षा देहि" कह कर गए हैं और वहां इनको मंडुवा-कोदों देने गई है गृह-स्वामिनी ! यह देख कर महा संत गा उठे––

मंडुआ लाई है क्या, भिक्षामें
मंडुआ लाई है क्या ?

* ६६ पु० की० भा० २;

१. दुष्ट

भजन लंबा है। सारे भजन में उस कुल-परिवार की कीर्ति कथा है। उनके स्वभाव सौंदर्य और संस्कार क्षमता का वर्णन है। वे गाते है, "पक्षी वाहन को प्रिय होकर। कुक्षि में कलुष न होकर भी।" लोभ नही छूटता। अपना पराया नहीं जाता। अपनों को मलाई और दूसरों को दूध-पानी वाली वृत्ति नही जाती। और उस महा संत के शब्दो में—"अरे रे! तुम में सब कुछ होकर भी कुछ भी न होने का सा हो गया न।" यह करुणा है।

ऐसे ही एक स्थान पर वे गाते हैं --

दिया तो भी भला हमें न दिया तो भी भला
देने वालोंको मिलेगा मदमें झूमने वालोंको क्या मिलेगा ॥प०॥
राक्षसांतक हमारे लक्ष्मीपति मिलेगा केवल शरणागतको ॥अ०प०॥

सर्वत्र भगवान का साक्षात्कार करने वाले संत से करुणा के अतिरिक्त और क्या पा सकते है? श्री पुरंदरदास के भिक्षा वृत्ति के अनुभव की और एक झांकी दे कर हम इस पुण्य स्मरण या पुण्य दर्शन का पटाक्षेप करें।

राग—पूर्वि अटताल*

ना दूंगी रे हाथ झूठन है। बच्चे।
रोते है रे तुम जाओ दासय्या ॥प०॥
घर लीपती हूं मै बर्तन धोती हूं
घरमें नहीं कोई जाओ दासय्या ॥१॥
बालक रोता है तेरी भी किच-किच
क्षण काल न रुकते जाओ दासय्या ॥२॥
घडोंचीसे नाज उतारना है अब
उदर शूल है तुम जाओ दासय्या ॥३॥
बाहर बैठी हूं घरमें कोई नहीं
निठुर ना बन तुम जाओ दासय्या ॥४॥
कौड़ी एक देके लाई हूं यह नाज
बालकको ना है रे जाओ दासय्या ॥५॥
आशाकारी तू है औ' दोषकारी मैं हूं
शेषाचल वास श्री पुरंदर बिठल ॥६॥

वे महा संत भिक्षावृत्ति के अनुभव कहते समय "कौड़ी एक देके लाई हूं

*१३१ पु० की०, भा० १

यह नाज। बालक को ना है रे जाम्रो दासय्या !" कहने वाली समाज-माता का करुण क्रंदन सुनाना भी नहीं भूले।

यद्यपि आज पुरंदर साहित्य सुधा-सागर की कुछ बूंदें ही उपलब्ध हैं, उसमें अनुभवों की—भौतिक और आाध्यात्मिक—विविधता, संगीत की मधुरता, साहित्य की सौंदर्य सुषमा, भावों का ललित तथा तांडव नृत्य विलास, कल्पना का गगन विहार, प्रतिभा की विद्युल्लता, भक्ति भाव का दिव्योन्माद, तथा जीवन की कृतार्थता का परमानंदानुभव कम नही है।

भजनामृत खंड में पाठकों को, यद्यपि मूल का माधुर्य अनुवाद में नही आ सकता, मूल की कल्पना अवश्य आयेगी।

: २ :

श्री पुरंदरदास के समकालीन महापुरुष

१. श्री व्यासराय अथवा व्यास मुनिः–

श्री व्यास मुनि श्री पुरंदरदास के गुरु, गुरु शिष्य कई बार मिले होंगे। अपने शिष्य के बारे में गुरु के भाव क्या थे और शिष्य के हृदय में गुरु के प्रति क्या भाव थे, यह जानना कम हृदयग्राही नहीं होगा।

श्री पुरंदरदास के भौतिक जीवन का चित्र चित्रित करते समय श्री व्यास मुनि का परिचय पाठकों को मिला ही होगा। श्री व्यास मुनि अपने युग के आध्यात्मिक केंद्र थे। वे अपने इस शिष्य के विषय में कहते हैं—

"दास कहें तो श्री पुरंदरदास ही है रे
वासुदेव कृष्णको ध्यानसे पूजने वाला ॥प०॥

अपने इस भजन में वे पुरंदर प्रशस्ति में कहते हैं:—

"नीति सब जानकर निगम वेद्यका नित्य
बात सुतमें रतका गा गा कर के
गीत नर्तनसे श्री कृष्ण पूजामें रत
पूतात्म पुरंदरदास है रे यह ॥"

और, श्री पुरंदरदास अपने गुरु के विषय में लिखते हैं :—

"व्यासरायके चरण कमल दर्शन मुझे
कितने जन्मके सुकृतसा मिलारे
सहस्र कुल कोटि पावन हुए मेरे
श्रीशके भजनका अधिकारी मैं बना ॥"

अपनी दीक्षा के विषय में वे लिखते है :—

"अंकित बिना न रहना कहके
पंकज नाभ श्री पुरंदर विठलका
अंकित दिया कृपासे व्यासरायने !"

श्री व्यासराय के निर्वाण का वर्णन करते समय वे गाते है :—

"पधारे श्री व्यासराय। चितचोरकी सभामें

अरविंदासनसे पुरंदर बिठल श्री सहित
आए कर पकड़ ले गये यह देखा ॥५॥

श्री पुरन्दरदास और श्री कनकदास

श्री कनकदास श्री पुरन्दरदास के समकालीन थे। अंत्यज थे। बचपन में ही माता-पिता को खो कर अनाथ बने थे। अपने भुजबल से आनेगुंदी राज्य के सामंत बने। संभवतः किसी युद्ध में (?) विरक्त हुए। राज्य छोड़ा। अपनी सम्पत्ति गरीबों में लुटा दी। कागीनेले नाम के गाँव में केशव की स्थापना की। दारिद्र्य व्रत लेकर कनकदास कहलाए !

श्री कनकदास का जीवन चमत्कारोंसे भरा है। उनके चमत्कारों की कथाएं कन्नड़ जनता की घरेलू बाते है। किन्तु आज भी कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण ऐसे है जो उन चमत्कारों की गवाही देते हैं। उनमें से एक है "कनकन किंड़ी" अर्थात् "कनक की खिड़की।"

इनके अत्यंज होने के कारण उडपी के कृष्ण के मन्दिर के पुजारियों ने इन को मन्दिर में जाने नही दिया। भक्त भगवान् का दर्शन नही कर पाए। बेचारे मन्दिर के पीछे जा बैठे। चित्त व्याकुल था। रात को नीद नही आई। अकुलाहट असह्य हुई। भक्त हृदय की अकुलाहट काव्य बन गई। "भक्त लंपट" भगवान् घूम गए ! सुबह पुजारी पूजा करने अन्दर गए। भगवान् घूम कर खड़े। दरवाजे की ओर पीठ, दीवार की ओर मुह !! दीवार में खिड़की बनाई गई। वही कनकन किंडी कहलाती है।

इन्ही श्री कनकदास के विषय में श्री पुरन्दरदास का एक भजन है। भजन एक घटना की गवाही है। भजन लम्बा है। भाषा की पकड संपूर्णतया रूपांतर करने नहीं देती। केवल सदर्भ का ही रूपांतर है।

कनकदास पर दया करनेसे व्यास,
मुनिको मठके सारे दोष देते हैं रे ॥प०॥

तीर्थके समय जब कनकको बुलाया,
धूर्त बने हुए विद्वान जो
सार्थक हुआ इसका सन्यास धर्म अब,
पूर्त हुआ कहने पर यति हंसके ॥१॥

यहां का शब्द-चित्र पद्यानुवाद नहीं करने देता ! दूसरे दिन यति ने सब विद्वानों की परीक्षा करने के लिए सबके हाथ में एक-एक केला देके एकांत में

जा कर खाने को कहा। आगे की घटना श्री पुरन्दरदास के शब्दों से ही सुनिए :—

गांव बाहर जाके दूर दूर बैठ,
एकांत में सारे खाके आए
मिला नहीं मुझको एकांत कह कनक,
ला दिया कदली फल मुनिराय को ॥३॥

यह देख कर व्यासराय गद्‌गद् हो गए। प्रेम से भरकर उनका हृदय छलक पड़ा। उन्होंने कहा :—

"सुनी तुमने इस कनक की बातें,
मूढ़ जन जान सकेंगे यह महिमा
अनाड़ी सा बना दिया सबने इसको,
देश देखने पर भी ऐसा ज्ञानी ना देखा ॥५॥

एक महान् भक्त की दूसरे एक महान् भक्त द्वारा आँखों देखी घटना का यह वर्णन है। इस पर श्री पुरन्दरदास कहते है श्री व्यासराय की बातें वहाँ बैठे हुए सब विद्वान् सुन रहे थे। जैसे :—

"माणिक मर्कटके हाथ होने जैसा,
भैसके सम्मुख बीन बजानेका सा
बधिरको वेणु नाद सुनानेका सा,
अन्धे मानवको दर्पण दिखाने का सा ॥७॥*

श्री पुरंदरदास और श्री कुमार व्यास

श्री कुमार व्यास श्री पुरंदरदास के समकालीन। कन्नड़के महानतम कवि, इन्होने कन्नड़ में महाभारत लिखा। यह कन्नड़ भाषा का, सम्भवतः भारतीय भाषाओं में भी, अप्रतिम भक्ति-काव्य है।

इस महा कवि का वास्तविक नाम नारायणप्पा था! "लिखा हुआ शब्द नहीं काटूंगा।" यह इनकी प्रतिज्ञा! ऐसे महा कवि को कन्नड़ जनता ने श्रद्धा-भक्ति से, प्रेम और आदर से "कुमार व्यास" की पदवी दी। इनकी प्रशस्ति मे कन्नड़ कवि हृदय गा उठा :—

"कुमार व्यासनु हाडिदनेंदरे। कलियुग द्वापर वागुवदु।"
"कुमार व्यास जब गाता है। कलियुग द्वापर होता है।"

ये महा कवि, गदग के रहने वाले। गदग वर्तमान धारवाड़ जिला की एक तह-

* २५ पु० की०, भा० १

सील। वहाँ नारायण का एक प्राचीन मन्दिर है। श्री नारायणप्पा ने इसी मंदिर में रहकर साधना की। स्वप्न में भगवान का आदेश हुआ, श्री नारायणप्पा महाभारत लिख कर कुमार व्यास कहलाये।

अब यह महाभारत दिखलाएं तो किसको दिखलाएं? किसको पढ़ कर सुनाएं? इस पर किस की सम्मति लें? वे श्री पुरन्दरदास के पास आए। श्री पुरंदरदास आनंद से झूम उठे। उस आनन्द में उनके हृदय गह्वर की कोयल कूक उठी :

सुलादि ध्रुवताल

हरिशरण मेरे घरमें आए, घर परम पावन हुआ आ हा...हा
हरिशरण मेरे साथ बोले मेरा त्रिकरण पावन हुआ आहा
हरिशरण मेरे घरमें खाए मेरे बिसेक कुल पावन हुए आहा
गदगके वीर नारायण के दास हरिपुरंदर बिठलरेयसे मिलने आए अहा.. हा

यह मिलन का आनंदोन्माद है। फिर काव्य श्रवण हुआ। श्री पुरंदरदास ने अपना आनंद व्यक्त किया। एक महा पुरुष जब दूसरे महा पुरुष की प्रशंसा करता है तब दोनों की महानता का दर्शन होता है। ऐसा प्रसंग नदी संगम सा पावन प्रसंग बन जाता है।

सुलादि मध्यताल

भारत आगमागोचर जानके मनुजको गोचर होनेके हेतु
वीर नारायण तू कवि बनके कुमार व्याससे भारत लिखवाया
बदरी आश्रममें रह कर बादरायण व्यास तू जैसे कहलाया
विदुर वंदित पुरंदर बिठल तू गदगका नारायण कहलाया रे ॥

श्री कुमार व्यास के भारत में श्री कृष्ण ही सब कुछ हैं। यही श्री कुमार व्यास के भारत की एक विशेषता है। वाल्मीकि के राम और तुलसीदास जी के राम में जो अन्तर है वही व्यासदेव के कृष्ण और श्री कुमार व्यास के कृष्ण में है। श्री पुरंदरदास ने यह अन्तर भी बड़ी ही मार्मिकता से दर्शाया है।

सुलादि अटताल

भारत मल्ल भीम कहते कछु। भारत मल्ल अर्जुन कहते कछु
भारत मल्ल कर्ण कहते कछु। भारत मल्ल कोई नहीं है भला
भारत मल्ल गदगका वीर नारायण है रे पुरंदर बिठला
यदु कुलमें जनम ले गोप कुल स्थिर किया गदगके पुरंदर बिठला ॥

: ३ :

श्री पुरंदरदास का कार्य

साहित्य

अब तक श्री पुरंदरदास के जीवन के पावन प्रसंगों का दर्शन किया। उनके काल के अन्य कुछ महा पुरुषों का भी परिचय पाया। अब उनके कार्य का भी थोड़ा दर्शन करें।

श्री पुरंदरदास का कार्य बहुमुखी है। वे जैसे संत थे वैसे साहित्यिक भी थे। साथ ही वे महान संगीतकार थे तथा संघटन चतुर थे। कर्नाटक की कुछ महान विभूतियों में श्री पुरंदरदास की गणना होती है।

इस पुस्तक का छोटा सा भजनामृत खंड देखने से, उनके साहित्यिक कार्य की कुछ कल्पना हो सकेगी। श्री पुरंदरदास के भजनों की सैकड़ों पंक्तियां आज भी कन्नड़ भाषा के सुभाषित है। यदि दास साहित्य के सुभाषितो का संग्रह किया जाय तो वह न केवल कन्नड़ भाषा के लिए किंतु सभी भारतीय भाषाओं के लिए सुंदर सुभाषितों का लोकोक्ति-कोष बन सकता है।

इसके अतिरिक्त श्री पुरंदर साहित्य का और एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और वही वस्तुतः क्रांतिकारी है। वह कार्य है "ब्राह्मणों से कन्नड़ भाषा में लिखे गए धार्मिक साहित्य को मान्यता दिलाना।"

भारत का यह बड़ा भारी दुर्दैव रहा है कि भारत में कभी लोक-भाषा को सम्मान का स्थान नहीं मिला। शतकों पर शतकें सरक गईं, राज्य-तंत्र आया, गया, साम्राज्य पर साम्राज्य बने बिगड़े, अंग्रेजों की दासता आई और गई स्वराज्य आया, जन-तंत्र कायम हुआ, किंतु लोक भाषा को सम्मान का स्थान नहीं मिला! परिणामस्वरूप नेता (चाहे राजनैतिक, धार्मिक अथवा अन्य किसी भी क्षेत्र के हों) और जनता की खाई नहीं पटी! नेता लोग जनता का विश्वास नहीं पा सके, जनता नेताओं को "अपना" नहीं मान सकी।

भगवान बुद्ध तथा महावीर ने इस तथ्य को पहचाना, उन्होंने लोक-भाषा में धर्म-ज्ञान देकर जन-भाषा को सम्मान का स्थान दिया। जनता में नव चैतन्य आया और बुद्ध-धर्म विश्व-धर्म बना। उस युग में जनता में से एक से एक उज्ज्वल नररत्न चमक उठे। किंतु धार्मिक नेताओं को यह नहीं सुहाया। 'धम्म" फिर "धर्म" बना! धर्म गोपनीय बना, और घरों के देव घरों तथा

चौके की चहारदिवारी में बन्दी हो गया।

बारहवीं सदी में श्री बसवेश्वर और उनके साथियों ने आध्यात्मिक जगत के गूढ़ातिगूढ़ तत्त्वों को सरल सुलभ लोक-भाषा में कह कर यह सिद्ध कर दिया कि "लोक-भाषा में भी गंभीर से गंभीर, गूढ़ से गूढ़ रहस्य को अभिव्यक्त करने की शक्ति है!" यदि वह शक्ति नहीं है तो "लोक भाषा से अनभिज्ञ स्वयं-मान्य पंडितों में नहीं है!"

कुछ ही दिन बाद वही कार्य महाराष्ट्र में श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने किया। किंतु धर्म प्राण ब्राह्मणों ने उस पर अपनी मान्यता का अंगूठा नहीं लगाया। श्री पुरंदरदास को भी इन धार्मिक नेताओं का मुकाबला करना पड़ा, जैसे करीब-करीब इन्हीं दिनों में उत्तर में श्री तुलसीदास को करना पड़ा था।

श्री पुरंदरदास ने केवल भक्ति तत्वों का ही निरूपण नहीं किया, ब्राह्मणों के कर्म काण्ड, आचमनादि नियमों का भी निरूपण कर डाला! आन्हिक और उसमें खंड पडने पर किए जाने वाले छोटे-मोटे प्रायश्चित्तों का भी निरूपण किया! शौच-मुख-मार्जन के नियमों का भी निरूपण किया। आचमन का यह नियम देखिए, कितनी सूक्ष्मता को दर्शाता है।

"गोकर्ण की भांति तलुवेका नाला होना।
उड़द डूबने जितना होना पानी
अधिक कम कर पानी लिया तो इच्छासे
पुरंदर विठल उसे करेगा सुरा सम!!" उ० भो० ६१

गायत्री जप के समय कब कैसे हाथ पकड़ना, इस विषय में स्मृति नियम को देखिए:—

"उदय-कालका जप नाभिके सम्मुख,
हृदय-सम्मुख मध्यान्ह समय
मुख-सम्मुख पकड़ हाथ सायं काल नित्य
पद्मनाभ श्री पुरंदर विठलको
इसी गायत्री मंत्रसे स्मरण करना!!" उ० भो० ११०

परिणामस्वरूप धर्म-ध्वज बने हुए ब्राह्मण विद्वानों को पुरंदर-साहित्य को धार्मिक साहित्य के रूप में स्वीकार करना पड़ा। इसकी कहानी तो श्री तुलसीदास के रामायण की कहानी सी है। किंतु स्वारस्य ऐसी कहानियों में नहीं, किंतु साहित्यिक प्रकार से और उसकी योग्यता से है। पुरंदर-साहित्य को उस युग के विद्वान आचार्यों ने "पुरंदरोपनिषद्" कह कर उसका गौरव किया। इस प्रकार पुरंदर-साहित्य कन्नड़-उपनिषद् बना!!

भारत में सदैव संतों ने जनता का विश्वास पाया है, क्योंकि वे जनता की भाषा में बोले। उन्होंने जन-भाषा का सम्मान किया। लोक-भाषा को सम्मान दिलाने में संतों ने समय-समय पर जो कार्य किया है वही उनका उज्ज्वलतम साहित्यिक कार्य है। उनके इसी कार्य ने भारत की जनता को संस्कारक्षम बना रखा है। उनके इसी कार्य से जनता में नैतिक और सांस्कृतिक जागृति रही है। एक-एक संत ने लोक शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया है वह दस-दस विश्वविद्यालय नहीं कर पाए हैं, क्योंकि उनकी शिक्षा का माध्यम लोक-भाषा नहीं रही है।

भगवान बुद्ध से आचार्य विनोबा भावे तक यह परम्परा चली आई है। भगवान बुद्ध ने लोक-भाषा में धर्म-ज्ञान देना प्रारम्भ किया, परिणामस्वरूप बुद्ध धर्म विश्व-धर्म बन गया। भारत जगद्गुरु के स्थान पर चढ़ा। श्री बसवेश्वर ने कन्नड़ भाषा में धर्म ज्ञान देना प्रारंभ किया, कर्नाटक की सामान्य से सामान्य जाति से, हीन से हीन जाति से भी सुन्दर नर-रत्न समाज के सम्मुख आए। कर्नाटक की कीर्ति भारतव्यापी बनी, कुछ ही वर्षों में अभूतपूर्व जन-जागृति हुई। महाराष्ट्र में श्री ज्ञानेश्वर महाराज तथा श्री नामदेव ने मराठी में धर्म-ज्ञान दिया और तीन-चार सौ साल तक सामान्य जन में से, अशिक्षित हीन जाति से भी महान नर-रत्न, सामने आये। कर्नाटक में पुनरपि श्री पुरंदरदास आदि दासों ने कन्नड़ में धर्म ज्ञान दिया, कन्नड़ जन-जीवन में मध्व-मत ने जड़ जमाई! उत्तर भारत में कबीर साहब ने लोक-भाषा में धर्म-ज्ञान देना प्रारम्भ किया तो उत्तर में भी महान क्रान्ति हुई। समाज के निम्नतम तबके से भी उच्चतम कवि उभर आए। लोक-प्रतिभा की विद्युल्लता चमकी। अन्त में महात्मा गांधीजी ने लोक शिक्षार्थ लोक-भाषा का सहारा लिया और गांव-गांव में से अपने युग की दासता के विरुद्ध घोर संघर्ष करने के लिए, मिट्टी के ढेले में से, गोबर गणेश भी रुद्र तांडव कर उठे। आज आचार्य विनोबा भावे लोक-भाषा में जीवन दर्शन कराने लगे, तो सारे विश्व में उसकी चमक दीख पडी। सारा विश्व उनकी ओर आशा से देखने लगा। यह है संत परंपरा का वास्तविक साहित्यिक मूल्यांकन!

ढाई हजार साल से भारत में इन दो परंपराओं में महान् संघर्ष चला आ रहा है। एक लोक भाषा को सम्मान दिलाने वाली संत परंपरा, दूसरी येनकेन प्रकारेण उसको दबा कर अपना वर्चस्व बनाए रखने वाली स्वयं मान्य, स्वय भू विद्वद्ध-परंपरा, अथवा नेता-पम्परा! जिस दिन यह संघर्ष मिटेगा वह भारत के लिए महान शुभ दिन होगा और उसी दिन से सच्चे अर्थों में भारत के उद्धार पर्व का श्रीगणेश होगा।

श्री पुरंदरदास भविष्य में लिखे जाने वाले भारत के उद्धार पर्व के एक जननायक हैं। उनके साहित्यिक कार्य का महत्व इसमें उतना नहीं है कि उनके कितने भजन हैं और किस प्रकार के हैं, किन्तु इसमें है कि उन्होंने अपने युग में विद्वन्मान्य भाषा की शक्ति और तेजस्विता से अप्रभावित रह कर लोक भाषा में स्थित शक्ति तथा तेजस्विता को कितना और किस प्रकार प्रकट किया।

इसका स्पष्ट प्रमाण है, सस्कृत में लिखे गए पुरंदर-प्रशस्ति के यह श्लोक—

ज्ञान वैराग्य संपन्नम् भक्ति मार्ग प्रवर्तकम्।
पुरंदर गुरुम् वंदे दास श्रेष्ठम् दया निधिम्॥
मन्मनोभीष्ट वरदं सर्वाभीष्ट फल प्रदम्।
पुरंदर गुरुम् वंदे दास श्रेष्ठम् दयानिधिम्॥

श्री पुरंदरदास ने संस्कृत में कुछ भी नहीं लिखा, किंतु संस्कृत के आचार्यों ने देव-भाषा में उनके स्तोत्र गाए! लोक-भाषा के साहित्यिक की यह महा विजय है।

: ४ :

श्री पुरंदरदास का कार्य

संगीत

पिछले अध्याय में श्री पुरंदरदास के भौतिक जीवन के चित्रपट के साथ उनके साहित्य का भी कुछ दर्शन किया। वस्तुत: भजनामृत खड में ही उनके साहित्य कार्य की विहंग दर्शन अथवा गिरि शिखर दर्शन सी झांकी मिलेगी। इस अध्याय में उनके और एक क्षेत्र का विचार करे। वह है संगीत का क्षेत्र!

श्री पुरंदरदास को कर्नाटक सगीत का पितामह कहा जाता है। मद्रास की म्यूज़िक एकाडमी का एक त्रैमासिक है, उसके एक अंक मे लिखा है—

"The personality of Shree Purandar Das is the greatest that a combination of spirituality, art and culture has produced. In renouncing the world for dedicating himself to God he made the heaviest sacrifice by giving up his untold wealth for which he was known as Navakoti Narayana. In music his achievements are so vast, and magnificient that the results of the efforts of all other composers put together cannot equal a fraction of his work. In the realm of music his services are precious beyond estimate. He is the father of the Karnatak system of music which stands unparallelled as the most evolved system of music in the world."

आंध्र प्रदेश के महानतम संत तथा कर्नाटक संगीत के महान आचार्य श्री त्यागराय के विषय में भी यह प्रसिद्ध है कि अपने बाल्यकाल में मां के मुख से सुने गए या सतत सुने जाने वाले श्री पुरंदरदास के भजनों से प्रभावित होकर वे इस संत-पथ के पथिक बने। श्री त्यागराय ने स्वप्न में श्री पुरंदरदास से ही संगीत और वैष्णव दीक्षा ली।

श्री पुरंदरदास का काल कर्नाटक, विजय नगर का स्वर्ण-युग था। कृष्णदेव राय सिंहासन पर था। देश-विदेश से निचुड कर आने वाली संपत्ति कर्नाटक को संपन्न और विलासी बना रही थी। "संगीत" और "नृत्य" नट विट और

गणिकाओं की कला बनकर समाज में नर को वानर बना रहे थे। मानव के वानरीकरण का साधन बनी हुई कला को श्री पुरंदरदास ने नर को नारायण होने का साधन बनाकर महान कार्य किया। उस काल में संगीत और नृत्य का आध्यात्मीकरण करने का कार्य वर्तमान समय का सिनेमा धुनों से व्याप्त वातावरण में परिवर्तन करने से अधिक कठिन काम था।

सदैव उच्चतम विचारों का विपर्यास हीनतम आचरण में होता आया है। सामान्यत: इसी को "व्यवहार" कहा जाता है। व्यवहारवादी नित नया दर्शन रचते जाते है। नये सिद्धांत बनाते जाते हैं। "जीविका को जीवन मानकर", "जीवन के लिए कला" कहनेवालों ने कला को "हल्दी धनिया अद्रक" बना दिया और स्वय "कला के पसारी" बने। और "कला के लिए कला" कहने वालों ने उसे उद्देश्यहीन बनाकर "कला को बला" बना दिया। ऐसे समय श्री पुरंदरदास ने जीविका और विलास-वैभव के साधन रूप संपत्ति के पहाड़ को ठुकराते हुए "जीवन" और "जीविका" का स्पष्ट अंतर बताकर कला की उपासना की। उनकी दृष्टि में "कला" केवल व्यक्ति-जीवन को ही नहीं, समाज के जीवन को, सामूहिक रूप से परिष्कृत करके "मानव के दिव्यीकरण का साधन" रूप थी।

श्री पुरंदरदास ने मानवी हृदय को पणती* बनाया, साहित्य की बत्ती बनाई, संगीत का तेल डालकर भगवत् प्रेम की ज्योति जलाई, समाज में संगीत की प्रतिष्ठा बढ़ाई और ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, आदि दैवी गुण संगीतमय बना दिये। नट विट गणिकाओं की जुल्फों और नयन बाणों में फंसी हुई संगीत सरस्वती घर-घर गृह-माताओं के कंठ में विराजमान हो गई। मां के मुख से सुने हुए भजनों से श्री त्यागराय जैसे संत कवि और संगीतज्ञ पैदा होने लगे।

आज भी कर्नाटक में गृह माताएं प्रातः काल उठते ही "एलु नारायण एलु लक्ष्मी रमण एलु श्री गिरिदोडेय श्री निवासा।" (उठ नारायण उठ लक्ष्मी रमण, उठ श्री स्वामी वेंकटेशा) गाती हुई झाड़ लगाती हैं। गृह-कृत्य करते-करते उनकी वाणी श्री पुरंदरदास और अन्य दासों के भजन अज्ञात भाव से गुनगुनाने लगती है। इन भजनों के द्वारा अज्ञात भाव से संगीत सरस्वती की उपासना होती है। "हाथ में काम और मन में राम", इस आध्यात्मिक सूत्र पर भाष्य-सा लिखा जाता है। संगीत की स्वर साधना होती है। मां की गोद में खेलने वाले बच्चों को, मां के इर्द-गिर्द मंडराने वाले बच्चों को, संगीत के साथ सदाचार की प्रेरणा मिलती है। ब्राह्मण, शूद्र, किसान, बढ़ई, लुहार, चमार, सब के सब अज्ञात भाव से इन

* दिया

भजनों द्वारा साहित्य और संगीत की उपासना करते हैं। वे बेचारे जानते भी नहीं कि हम कला की उपासना कर रहे हैं। किंतु कला हस्तगत होती है, भले ही वे शास्त्र से संपूर्णतः अनभिज्ञ हों।

कन्नड़ हरिदासों के भजन न राधाकृष्ण की प्रेम गाथा हैं, न कृष्ण अथवा राम की कथा। वह "समाज-ब्रह्म" का चरित्र-चित्रण है। उनके भजन समाज-जीवन में ताने-बाने की भांति बुन से गये है। किसी पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ता है, सहन करना असह्य होता है, कन्नड़ जन मन गुनगुनाने लगता है "चिंते यातको वयलु भ्रांति यातको" (चिंता क्यों रे मनुजा भ्रांति क्यों रे !)। घर मे किसी आत्मीय की मृत्यु होती है, आंसू पोंछते हुए वह अपने आपको सान्त्वना देता है : "कोट्ट दैववु कोंड्ड ओय्दरे, कुट्टि अलुवद्याको मनुजा !" (देने वाला ले गया तो बिलख के क्यों रोता है मनुजा !)। किसी का अपमान होता है, अपमान से हृदय फट जाता है, तब आंखों में आंसू छलक पड़ते हैं और वह गा उठता है, "अपमान होना भला है।" मनुष्य अनंत परिश्रम करता है, पसीने की गंगा बहाता है, और वह गंगा बालू में सूख जाने वाली सरस्वती सी सूख जाती है, जीवन को हरा नहीं बनाती, तब वह गा उठता है "नामाडिद कर्म बलवंत वादरे नी माड्डु वदेनो देवा।" "मेरा किया कर्म बलवान हो तो तू क्या करेगा, कह देव नारायण !" गरीबी काटती है, दारिद्र्य रुलाता है, वह गुनगुनाता है, "नान्या के बड़वनु नान्याके परदेशी ! श्री निधे हरि एनगे नीनिरूव तनक !" "मैं क्यों अनाथ हूं मैं क्यों हूं दरिद्री ! श्री निधे हरि मुझे तू जब तलक है !"

जैसे हमारे बडे-बड़े शहरों में रास्ते पर चलते-फिरते बच्चे भी बेताल और बेसुर, "मैंने पीना सीख लिया" गाते हुए चलते हैं, वैसे कर्नाटक के घरों मे बच्चियां गाती है "तारक्क बिंदिगे नीरिगे होगुवे, तारे बिंदिगेय !" "ला अम्मा मटकी पानी को जाऊंगी, लारी वह मटकी !" वह अपने छोटे भइया को गोद में लेकर कहती है "यारे रंगन करेय बंदवलु। यारे कृष्णन करेय बंदवलु !" "कौन रंग को बुलाने आई। कौन कृष्ण को बुलाने आई है।" बच्ची गाती है, उनकी उंगलियां ताल पकड़ती हैं, पैर थिरकते हैं, सिर डुलता है, किंतु इन लोगों से कोई पूछें तुम किस राग से गाते हो, या किस राग से गाती हो, वह मौन हो जायगी। इन लोगों का यह हृदय राग है। हृदय का उद्रेक है, भाव सागर की ऊर्मियां हैं, जो संगीत सृजन करती हुई उठ रही हैं। उनका हृदय गाता है जैसे कोयल गाती है, जैसे समुद्र गरजता है।

यह श्री पुरंदरदास और कन्नड़ हरिदासों की देन है कन्नड़ जनता को।

यही देन तेलुगु लोगों को महात्मा त्यागराय ने दी। कर्नाटक संगीत के पंडित कहते है कि पुरंदरदास ने "माया मालव" जैसे रागों की सृष्टि की। पांच प्रकार के अथवा सात प्रकार के (?) तालों की रचना की। राग विस्तार के नियम बनाए, 'सुलादि" के नाम से अत्यत क्लिष्टतम रागों की रचना की। "श्री हरि बजाता बासरी" पुरंदरदास के इस भजन में उस समय के कई रागों के नाम मिलते हैं। कर्नाटक संगीत के विद्वान् कहते हैं कि कर्नाटक संगीत में प्रचलित पाठ्यक्रम श्री पुरंदरदास ने बनाया था। श्री पुरंदरदास के पहले कर्नाटक संगीत के अभ्यासी खरह प्रिय जोड़ से अपनी शिक्षा का श्रीगणेश करते थे किंतु श्री पुरंदरदास ने माया मालव गौल के जोड़ से संगीत का पाठ्यक्रम प्रारंभ किया जो अधिक सहज था, सरल था। सगीत शास्त्र के प्रवीणों ने शास्त्रीय विवेचन करके बताया है कि श्री पुरंदरदास के भजन किस प्रकार कर्नाटक संगीत की भद्रतम नींव है। कर्नाटक सगीत के महान आचार्य आदियप्प अय्यर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि मेरे द्वारा रचे गये तान, वर्ण, तिल्लाण आदि श्री पुरंदरदास के रचे हुए तान, वर्ण, तिल्लाण के आधार पर हैं। किंतु यह अत्यत दुःख की बात है कि आज वह कृतियां भी उपलब्ध नहीं है।

संगीत शास्त्रियों का मत है कि श्री पुरदरदास की सगीत प्रतिभा का सर्वोच्च मापदंड उनके भजन "सुलादि" है। "सुलादि" मे उनकी संगीत प्रतिभा पराकाष्ठा को पहुंची हुई है। आज सुलादि को गाकर दिखाने वाले संगीतज्ञ बिरले ही है। सुलादि की चाल कीर्तन की ही चाल सी है। किंतु उनमें "पल्लवी" तथा "अनुपल्लवी" नहीं होती। सुलादि के कई भाग होते है। वे सब भिन्न-भिन्न ताल में होते है। कुछ-कुछ सुलादि में एक-एक ताल का चरण एक-एक राग में गाने का प्रबंध भी है। श्री तुलजेंद्र महाराज ने अपना ग्रंथ "सगीत सारामृत" में लिखा है कि मैंने जिन-जिन राग तथा लक्षणों का विवेचन किया है उन सबका आधार श्री पुरंदरदास ने अपने सुलादि के राग विवरण में दिया है।

श्री पुरंदरदास ने राग और तालों की व्यवस्था की, उनके अनुसार हजारों भजन गाए। और सहज स्वाभाविक ढंग से समाज में सामूहिक रूप से सगीत साधना हो ऐसी व्यवस्था भी की। उसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में होगा।

: ५ :

श्री पुरंदरदास का कार्य

सांस्कृतिक

श्री पुरंदरदास ने संगीत का व्यवस्थित पाठ्यक्रम बनाया, उसके अनुसार हजारों भजन गाए, अपने युग के कई लोगों को ऐसी प्रेरणा भी दी, साथ-साथ ऐसी कुछ परंपराएं डाल दी कि समाज में यह प्रणाली युग-युग चले।

ये परंपराएं मानो कर्नाटक के निःशुल्क संगीत विद्यालय है। इनके ये रूप हैं : भजन सप्ताह, भजन उठना, भजन।

"सात दिन का अखंड भजन 'भजन सप्ताह' कहलाता है।" कर्नाटक के कई गांव और शहर के मंदिरों में, तथा कही-कहीं सार्वजनिक स्थान पर भी यह उत्सव होता है।

यह उत्सव प्रतिवर्ष एक निश्चित तिथि को प्रारंभ होता है। उस दिन प्रातःकाल मे मंदिर के सभामंडप में, अथवा प्रांगण मे एक ज्योति जलाई जाती है। उस ज्योति को "नंदादीप" कहा जाता है। वह नदादीप सात दिन तक सतत और अखड जलता रहता है। उसको बीच में कभी न बुझने देने की दृष्टि से अत्यधिक सावधानी बरती जाती है। क्योंकि उसका बुझना समग्र गांव के लिए अशुभ माना जाता है।

उस अखंड ज्योति के साथ अखंड भजन चलता है। जब ज्योति जलाई जाती है तभी ताल की ध्वनि के साथ भजन का प्रारंभ होता है। जैसे सात दिन तक ज्योति अखंड जलती है वैसे ही सात दिन तक ताल की ध्वनि भी अखंड गूजती रहती है। साथ-साथ भजन गाए जाते हैं।

इस उत्सव में गांव के सब लोग सम्मिलित होते हैं। मुहल्ले या जाति के अनुसार टोलियां बनती हैं। प्रत्येक टोली दो घटे तक ज्योति तथा ताल की ध्वनि की अखंडता का दायित्व वहन करती है। इस प्रकार चौबीसों घटे, दिन-रात नियम से टोलियां बदलती रहती हैं। दूसरी टोली द्वारा स्थान ग्रहण करने पर ही पहली टोली स्थान छोड़ती है। यह टोलियां अपने दो घंटे में उस नंदादीप अर्थात् अखंड ज्योति की परिक्रमा करते रहते हैं। बीच-बीच में विशिष्ट ताल के भजन में विशेष ढंग से नाचते भी हैं।

इस उत्सव में कुछ टोलियां अपने भजन काल में गांव के लोगों को आक-

षित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का आयोजन करती हैं। जैसे भजन के समय तबला, बाजा आदि का प्रबंध करना। अच्छे सुंदर ध्वनि वाले तालों का प्रबंध करना। पहले से तैयार करके भजनों को गाना। नाच के भजनों को गाना, आदि।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी, कहीं-कही "संत आह्वान" का कार्यक्रम होता है। यह कार्यक्रम अधिकतर गांवों मे होता है और शाम के समय से रात के बारह बजे तक अधिक होता है, जिससे पास-पडोस के दूसरे गांव के लोग भी आएं।

यह कार्यक्रम वास्तविक रूप से सांस्कृतिक कार्यक्रम होता है। कोई व्यक्ति किसी संत के दस-बीस सुन्दर भजन, ठीक ताल और सुर से गाने का अभ्यास करता है। भजन के समय उसी संत सा स्वांग सजाकर अपने आपको उस संत के रूप में उपस्थित करता है। भजन में आए हुए भजनी उसी आदर से, जो उस संत के योग्य हो, उसका स्वागत करते है। संत अपने भजन गाता है, सैकड़ों लोग उनका अनुकरण करके उसको दुहराते है।

ऐसे समय सौ, दो सौ, तीन सौ लोग भी सम्मिलित रूप से भजन गाते है। तीस-चालीस, कभी-कभी उससे अधिक ताल बजते है। भजनी गाते-नाचते अखंड ज्योति की परिक्रमा करते है।

यह संत आह्वान केवल कन्नड़ संतों तक ही सीमित नही है। जैसे कन्नड़ के श्री पुरन्दरदास, श्री कनकदास, श्री जगन्नाथ दास, श्री विजयदास, श्री गोपाल दास आदि संतों का आह्वान होता है वैसे ही महाराष्ट्र के श्री ज्ञानेश्वर, श्री नामदेव, श्री एकनाथ, श्री रामदास, श्री तुकाराम तथा हिंदी के महात्मा कबीर दास, श्री सूरदास, श्री तुलसीदास तथा श्री मीरा का आह्वान भी होता है। हिन्दी संतों में कबीर और मीरा के भजन अधिक गाए जाते है।

इसके लिए मराठी और हिन्दी के भजन भी, भले ही गाने वाले उन भजनों का अर्थ नहीं जानते हों, पर्याप्त संख्या में भली-भांति पाठ किए जाते हैं।

हिन्दी के विद्वान पाठक जो अधिकतर दक्षिण के संतों के नाम तक नहीं जानते यह सुनकर चकित होंगे, वैसे ही प्रसन्न भी होंगे, कि आज से पैंतालीस-पचास वर्ष पहले कन्नड़ लिपि में, हजारों की संख्या में, हिन्दी भजन उपलब्ध थे!

प्रथम विश्व-युद्ध से पहले, या उन्हीं दिनों में श्री पांवजे गुरुराव के मध्व सिद्धान्त ग्रन्थालय द्वारा "पद्यरत्नाकर" नाम से भजनों के तीन खण्ड प्रकाशित किए गए थे। उसका आकार प्रकार काशी के ज्ञान मण्डल द्वारा प्रकाशित साहित्य कोश सरीखा था। उसके भजन-संकलन और सम्पादन में भी एक विशेषता थी। उन

तीनों खण्डों में मिलाकर श्री गणपति पर, श्री राम पर, श्री कृष्ण पर, श्री शिव पर, श्री शक्ति पर और तत्व ज्ञान पर, ऐसे भजनों का सम्पादन और संकलन किया था। उसमें कन्नड़, मराठी और हिन्दी, इन तीन भाषाओं के भजन संकलन किए गये थे और लिपि कन्नड़ थी।

इन तीनों खण्डों की दो या तीन आवृत्तिया निकल चुकी थी। संभवतः आज ये ग्रन्थ बाजार में उपलब्ध नहीं हैं।

अर्थात् ये "भजन सप्ताह" और "भजन" इतने लोक-प्रिय थे कि प्रकाशकों को इस प्रकार का साहस करने के लिए भी प्रेरणा दे सक्ते थे।

इन भजन सप्ताह उत्सवों में सात दिन तक अखण्ड भजन चलने के बाद आठवें दिन प्रातःकाल ठीक उसी समय जिस समय प्रारम्भ के दिन मे ज्योति जलाई गई थी, उत्साहातिरेक में "ओकली" खेली जाती है। उस समय अधिकतर "गोविंद कहो गोविंद", "गोपाल कहो गोपाल" अथवा "विट्ठल विट्ठल" की ही गर्जना आकाश मे गूजती है।

उस समय गुलाल उड़ाया जाता है। हल्दी और चूने से लाल किया गया पानी उछाला जाता है। कभी-कभी दही-चूडे का मटका ऊपर लटकाया जाता है, पके हुए केलों का घोंद लटकाया जाता है। भजनी लोग ताल और ढोलक बजाते, गुलाल और लाल पानी उछालते, हरि नाम स्मरण करते, नाचते उछलते, भावोन्माद में अपनी सुध-बुध भूल कर, उछल-उछल कर, दही-चूड़ेका मटका और के घोंद के केले तोड़ने का वह दृश्य अद्भुत होता है। उससे भी अद्भुत है ऐसे उत्साह मे भी हाथ में आये हुए केले को दस लोगो में बांट कर खाना!

इस उत्सव के बाद भजनी लोग नाचते गाते, भजन करते करते, गांव के बाहर किसी जलाशय पर जाते हैं। वहां स्नान करके लौटते है। कभी-कभी, परम्परानुसार मंदिर की भगवान की मूर्ति भी पालकी या मंडप में इन लोगों के साथ होती है। इस उत्सव में तो घर-घर से आरती ले आना, आरती उतारना, भजनियों का मंगल गाना आदि दिव्य वातावरण निर्माण करता है।

कभी-कभी ओकली खेलने के बाद भोज भी होता है। इस भोज को "समराधना" कहते हैं। उस दिन रात को कोई धार्मिक, पौराणिक, अथवा संत जीवन पर नाटक भी होता है। यहां पर भी केवल कन्नड़ संत ही नाटक का विषय नहीं होता। भारत के किसी संत पर नाटक खेला जाता है। इन पंक्तियों का लेखक यह नहीं जानता कि हिन्दी में "संत कबीर" नाटक है या नहीं, किन्तु

उसको अपने बचपन में ही कन्नड़ भाषा के संत कबीर नाटक में "कमाल" होने का भाग्य मिला था।

नहीं तो, रात को मन्दिर मे, अथवा भजन सप्ताह में रखी हुई ज्योति के स्थान पर भजन होता है। पश्चात् आरती, प्रसाद हो कर सात दिन का यह उत्सव समाप्त होता है।

कर्नाटक मे कई स्थान ऐसे है जहां सदियों से, अर्थात् ३००-४०० वर्षो से यह उत्सव होता आया है।

एक छोटे से गांव मे एक ब्राह्मण के घर सप्ताह भजन होता था। इन पंक्तियों के लेखक के बचपन का यह अत्यन्त वेदनापूर्ण स्मरण है! एक वर्ष उनके घर में उन्हीं दिनों एक मौत होने से भजन सप्ताह नही हुआ। परिणाम स्वरूप उस ब्राह्मण की व्याकुलता अवर्णनीय थी। उस वृद्ध ब्राह्मण को बुढ़ापे में अपने पोते के मरने का उतना दुःख नही था जितना सप्ताह भजन रुकने का दुःख था।

इन पंक्तियों के लेखक के नाना के सम्मुख वह ब्राह्मण अपना दुःख व्यक्त कर रहे थे। उनके घर में कभी कोई दास-हरिभक्त आए थे। उस समय से उस के स्मरण में सप्ताह होता था, बारह (?) पीढ़ियों के बाद इस साल वह उत्सव नहीं हुआ! "अब मुझे जीने की भी इच्छा नहीं रही!" वह ब्राह्मण यह कहते हुए रो पड़ा था। हरि स्मरण में विघ्न रूप अपना पोता भी—जो तरुण था और घराने की आशा आकाक्षाओं का केन्द्र था—उन्हें शत्रु रूप लगता था।

जैसे भजन सप्ताह कर्नाटक के सामूहिक संगीत विद्यालय और सांस्कृतिक केन्द्र हैं वैसे ही "भजन उठना" भी एक "जंगम विद्यापीठ" है। अधिकतर वर्षा के दिनों में भजन उठते हैं। इसको कन्नड़ में "भजने एलुवदु" कहते है, अर्थात् "भजन उठना।"

वर्षा के दिनों में, रात के भोजन के बाद, सामान्यतः नौ, सवा नौ के लगभग गांव के किसी मंदिर से, या किसी सार्वजनिक स्थान से ये भजन उठते हैं। इनके साथ एक ज्योति होती है, (तिल के या गोले के तेल का नीरांजन रखा हुआ एक कांच का चौकोर लालटेन) उस पर एक-आध फूल का हार डाला जाता है। चारों ओर अगर-बत्तियां भी लगाई जाती हैं। उस ज्योति के दोनों ओर कतार बांध कर भजनी लोग चलते हैं। प्रकाश के लिए अन्य लालटेन भी होते हैं। गैस बत्ती भी होती है। ऐसा यह भजन मण्डल ताल और ढोलक लेकर भजन गाता हुआ गांव की मुख्य-मुख्य सड़कों पर से चलता है। चलता नहीं, सरकता है! क्योंकि

भजन किसी सज्जन के घर के सामने आते ही घर का दरवाजा खुलता है। घर में से कोई स्त्री या पुरुष अपने घर के सामने "आरती"—एक थाल में नीरांजन जलाकर—रख देता है। भजन मण्डल के साथ वाली ज्योति उस आरती के पास रखी जाती है। भजन की एक-आध पंक्ति गाई जाती है। फिर आरती का एक छन्द गाया जाता है और भजन मण्डली "पुंडलीकवरद पांडुरंग हरि विठल" कहती हुई आगे बढ़ती है। अधिकतर गृहस्वामी अपने बड़े बच्चों के साथ भजन मण्डली मे सम्मिलित हो आगे बढ़ता है।

इस भजन उठने में भी—जब एक गाव मे दो-दो भजन उठते हैं तब प्रतियोगिता में—"संत आह्वान" होता है। वैसे तो अलग-अलग मुहल्लों में उठने वाले भजनों की निर्धारित सड़क अलग होती है। दो भजन मंडल मिलते बहुत कम है। किंतु विशेष अवसर पर जैसे शनिवार या एकादशी के दिन किसी विष्णु मदिर मे जाते-आते समय, अथवा मंगलवार शुक्रवार को लक्ष्मी या शक्ति मदिर में जाते-आते समय ये आपस में मिलते है। जब मिलते है तब "अपनी अच्छाई दिखाने की" प्रतियोगिता होती है। किंतु किसी भी प्रकार की कटुता कभी नहीं आने पाती !

ऐसे भजन सामान्य दो तथा तीन महीने चलते है। आगे किसी शुभ दिन देख कर "मंगल" किया जाता है। मंगल का अर्थ मुक्ताय ! इस मंगल उत्सव में दूसरे मंडल के लोग भी सामूहिक रूप से सम्मिलित होते है। इस मगल के दिन भी कभी-कभी चदा कर के बड़ा भोज किया जाता है। नहीं तो अतिम दिन बड़े ही उत्सव पूर्ण ढंग से भजन उठता है। जहां से भजन उठता है वहां आकर मंगल गाते हैं। फिर प्रसाद वितरण होता है।

इसके अतिरिक्त कई मंदिर ऐसे है जहां नित्य एक-डेढ़ घंटा भजन होता है। चार-आठ लोग बैठ कर भजन गाते है। ढोलक या तबला, बाजा बजाते है। ताल तो है ही, बिना उसके भजन असभव है।

ऐसे ही हजारों घर हैं जहां दीपक जलाने के बाद रात्रि भोजन के पहले घर के लोग बैठकर घंटा, आध घंटा भजन करते है। इसमें घर के सभी बड़े सदस्य भले ही सम्मिलित न होते हों, किंतु बच्चे अनिवार्य रूप से सम्मिलित होते है।

इन भजनों के उत्सवों में हजारों लोग सम्मिलित होते हैं। कभी-कभी पचास-पचास साठ-साठ ताल बजते हैं। चार-चार पांच-पांच ढोलक बजते हैं। किंतु इसमें तनिक भी अपलाप नहीं पाया जाता। पचासों ताल एक ताल सा बजते हैं। सैकड़ों कंठ एक कंठ होकर गाते हैं। इसमें यदि कोई मिल नहीं पाता, अपलाप, अपस्वर निकलता है, वह मौन हो जाता है, अपने हाथ में जो ताल है दूसरे को

दे देता है। बड़े लोग प्रेम से, शालीनता से, उसकी भूल बताते हैं। शायद ही कटुता का मौका आता हो।

भजन में नाचते समय भी कदम से कदम मिलाने में जो सम-रसता पाई जाती है वह अद्वितीय होती है। वहां तो कदम मिलाना ही महत्व का रहता है। और कोई बात होती ही नही। इन सब की शिक्षा-दीक्षा केवल प्रत्यक्ष भजनों में ही होती है, जैसे गीता प्रत्यक्ष युद्ध भूमि में कही गई थी।

इन भजनों मे गाने वाले यह नहीं जानते कि वह कौनसा राग गाते हैं। वे यह नही जानते यह कौनसा ताल है। किंतु ताल स्वर के साथ गाते है। अज्ञात भाव से संगीत सरस्वती की उपासना करते है। अज्ञात भाव से ज्ञान, वैराग्य, तथा भक्ति-भाव में पगते है। अज्ञात भाव से हरि नाम की कीर्ति-कथा के ध्वज के स्तंभ बनते हैं। इन भजनों ने स्थानिक हरिदासों को भी पैदा किया, जिनका नाम भी कोई नहीं जानता, किंतु उनके भजन स्थानिक रूप में गाए जाते हैं।

यह सब श्री पुरंदरदास के कार्य का फल है। उन्होंने कन्नड़ जन-जीवन के हृदय की पणती में सुविचार और सदाचार की बत्ती रखकर, संगीत का तेल डाल, हरि प्रेम की जो ज्योति जलाई थी वह अखंड रूप से नंदा दीप सा जल रही है।

उनकी उस कार्य-ज्योति का हम वंदन करें :—

> **शुभं करोति कल्याणम् आरोग्यं धन संपदा**
> **शत्रु बुद्धि विनाशाय दीप ज्योतिर्नमोस्तुते ।।**

श्री पुरंदरदास का उपास्य

(पंढरपुर का पांडुरंग)
विठोबा, विट्ठल

: ६ :

श्री पुरंदरदास की उपासना और उपास्य

पिछले अध्याय में श्री पुरंदरदास का भौतिक जीवन, उनके कार्य आदि का परिचय दिया गया। अब उनकी उपासना तथा उपास्य का थोड़ा विचार करें।

उनकी उपासना का मुख्य रूप नाम स्मरण है। वे कहते हैं "मनो वचन में कार्य कर्म में। तू तू तू ही है पुरंदर विठल।" वे यह भी गाते हैं "तुझे ही गाऊंगा। तुझे ही पूजूंगा। तुझे ही स्मरुंगा। तुझ से ही मांगूंगा तेरे ही चरण का आसरा चाहूंगा।"

वे परमात्मा से भी अधिक उनके नाम को महत्त्व देते हैं। क्योंकि सब को नाम ने ही राखा है।

उनका नाम "विठल" है।

यह विठल उत्तर भारतवालों को अपरिचित सा है। किंतु यह कन्नड और महाराष्ट्र के संत-कुल का कुल-दैवत है।

यह पंढरपुर का रहने वाला है। श्री पुरंदरदास, जिसने पत्नी की नथ ली, उसका परिचय देते समय कहते हैं, 'कहते है वह पंढरपुर का है। पांडुरंग कहलाता है।"

श्री पुरंदरदास के अतिरिक्त कन्नड़ वैष्णव संतों में श्री श्रीपादराय ने "रंग विठल", श्री विजय दास ने "विजय विठल", श्री भागण्ण दास ने "गोपाल विठल", "श्री जगन्नाथदास ने "जगनाथ विठल" के नाम से श्री विठल की उपासना की है। महाराष्ट्र के सभी संतों ने "विठल" को गाया है। इतना ही नही श्री नामदेव ने "विठल" नाम को भारत व्यापी बना दिया है। गुजरात के नरसी मेहता, राजस्थान की मीराबाई, पंजाब के नानकदेव ने भी विठल को गाया है। किंतु कन्नड़ संत श्री पादराय से (कन्नड़ वैष्णव संतों में सबसे पहले इन्होंने 'विठल" को गाया है। "रंग विठल" इनकी मुद्रिका थी। ये श्री व्यासराय के गुरु थे।) पहले ही श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने "विठल यह कानड़ा कर्नाटकु" कहते हुए उसको "कन्नड़ कुल देवता" घोषित कर दिया है। यह बड़ा रहस्यपूर्ण है।

उत्तर भारत के पाठकों को ध्यान में रख कर इस विट्ठल का थोड़ा सा विस्तृत परिचय दें तो वह अनुपयुक्त नहीं होगा। भारत भर में वही एक ऐसा देव है कि भक्त उसका स्पर्श सुख ले सकते हैं। मानव मात्र (पू० विनोबा भावे की तपस्या से) उसके चरण स्पर्श कर सकते हैं।

जब मूर्ति पूजा के विरोधी ईसाई और मुसलमान भी उस मूर्ति का चरण स्पर्श करके गदगद् हुए, तब हजारों लोगों के सम्मुख छलकने वाले आंसुओं के पुण्य प्रवाह से पुलकित पू० विनोबा ने कहा, "आज हमने उसके चरण स्पर्श करके अनुभव किया कि उसको 'विठल को' रोमांच हो आया था!" और सुनने वाले भी यह सुनकर छलकने वाले आंसुओं के पुण्य प्रवाह से पावन हुए।

ई० स० तेरहवी सदी से कर्नाटक की दास परंपरा प्रारंभ हुई। किंतु उस समय उसका उपासना केंद्र उड़पी रहा। उड़पी का देव "हाथ में मथनी लिये हुए बाल कृष्ण है।"

इससे प्रथम दक्षिण के वैष्णव उपासना केंद्र तिरुपति (वेंकटाचल) का स्वामी वेंकटेश, कुंभकोणम् तथा श्री रंग रहा।

पंद्रहवी सदी में कर्नाटक के दासों का उपास्य पंढरपुर का विठल रहा। कन्नड़ के अठारह संतों में से ग्यारह संतों ने "विठल" को अपना अंकित (छाप) बना लिया है।

यह विठल पंढरपुर मे रहता है। पंढरपुर भीमा नदी के तीर पर सोलापुर जिला में स्थित है।

यह स्थान अत्यंत पुराना है। वहां की मूर्ति का चित्र इसके साथ दिया है। शिला शासन अथवा ताम्र शासन से ही इसकी प्राचीनता का निर्णय करना हो तो विठ्ठल के विषय में ई० स० छठी सदी का ताम्रपत्र देखने को मिलता है। कुछ कन्नड़ विद्वानों का मत हैं कि "विट्ठ" अथवा "विठ्ठल" "विष्णु" का कन्नड़ अपभ्रंश है।

श्री जगद्गुरु आद्यशंकराचार्य ने भी विठ्ठल का दर्शन किया है। 'महा-योग पीठे तटे भीम रथ्यां वरंपुंडरीकाय दातुं मुनींद्रैः' ऐसे एक पांडुरंगाष्टक भी गाया है। और विठल का जय घोष भी "पुंडरीक वरद पांडुरंग हरि विठ्ठल!" अर्थात् पुंडरीक को वर देने के लिए ही यह अवतार था।

तब, जब तक इस पुंडरीक का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता तब तक विठल की ऐतिहासिक खोज छोड़ देना अच्छा है। विठल से पहले पुंडरीक की खोज करना अधिक सयुक्तिक है और पुंडरीक के विषय में कोई ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं दीखता।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी अति प्राचीन काल से यह वैष्णव-पीठ है। कर्नाटक और महाराष्ट्र के वैष्णव इसको अत्यधिक अपना मानते हैं। इसको केवल प्रणाम ही नहीं करते इसको प्यार भी करते हैं। और इससे लड़ते-भिड़ते भी हैं, बड़ी शान से। अरे जा, बड़ा भगवान बना है, भक्त भगवान का बाप है !" यहां तक सुनाते हैं। "मैं सनाथ हूं तू अनाथ है। मेरा बाप तू है तेरा बाप कौन है, बता !" कहने में भी नहीं चूकते। इसलिए "विठ्ठल" के साथ पीछे "श्री" या आगे "जी" लगाने की आवश्यकता नही है, इतना वह भक्त का अपना है।

फिर भी श्री पुरंदरदास का नाम का आग्रह नही है। वे तथा कन्नड़ के अन्य संत एक ही भजन में अनेक नाम गूथ देते है। परिणामस्वरूप दक्षिण में "नाम भक्ति शाखाएं"नहीं बनीं।

श्री पुरंदरदास ने विठल की भांति "हरि" और"नारायण"का भी खूब स्मरण किया है। एक भागवत होने के नाते गीता का "वासुदेव" तो सर्वव्यापी है ही।

"रामकृष्ण हरि"महाराष्ट्र के संतों का इष्ट मंत्र है। श्री एकनाथ महाराज ने इस सूत्र का भाष्य सा किया है। "जिस नाम मे मन रमता है वह राम", जिस के आकर्षण की टीस लगती है वह कृष्ण"तथा"जिस नाम से चिता मिटती है वह हरि", इन तीनों को श्री पुरंदरदास ने अपनाया था।

दक्षिण में श्री रामानुजाचार्य ने नारायण मंत्र दिया। श्री पुरंदरदास ने अपने दक्षिण से "नारायण" लिया और उत्तर से "हरि" लिया ! और बीच में रह कर "हरि नारायण हरि नारायण हरि नारायण कहोरे मना !"कहते हुए अपने मन को "नारायण" और "हरि" के बीच फंसा दिया, जिससे वह छूट न जाय !

जिसके नाम की टीस लगती है वह सर्वत्र है ही। जिसकी टीस लग चुकी है उसके लिए उपदेश क्यों ? वह सहज भाव से बार-बार आएगा ही। श्री पुरंदरदास के भजनों में मानवी मन को टीस लगाने वाला वह चित-चोर सर्वत्र झांकता है।

इसके साथ शेषागिरि तास "श्री वेंकटेश" है। दक्षिण में "तिरूपति" को अर्थात् "वेंकटाचल" अथवा "शेष गिरि" को वैकुंठ मानते हैं। "वेंकटेश" को "युग-स्वामी" माना जाता है। कलियुग के महा-पापों से पृथ्वी की रक्षा करने के लिए वह पृथ्वी पर आया है, यह दक्षिण के "वैष्णव" "श्री वैष्णवों" की निष्ठा !

साथ साथ "गोपाल" और "गोविंद" जैसे गोकुल को योग क्षेम का द्योतक है।

इसके साथ "जगदंतर्यामि" और "पर ब्रह्म" को भी वे नहीं भूले। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की "मेरा स्वामी जगदंतर्यामि" है। "अंदर देखा तो पर ब्रह्म बैठा है!"

अर्थात् बाहर देखा तो ये सब विठल, नारायण, कृष्ण, हरि, वासुदेव, राम देव, आदि अनेक हैं और अंदर देखो तो वह "जगदंतर्यामि पर ब्रह्म" है!

यहां उपासना उपासक और उपास्य का एकाकार सा है। उपासना पूर्ण है!

"सहस्र नाम का स्वामी" एक है, वह जगदंतर्यामि पर ब्रह्म हैं।

इसके बाद यह कहने की आवश्यकता ही क्या है "सगुण निर्गुण में नहीं कछु भेद!"

श्री पुरंदर विठल का यह वास्तविक रूप है।

अहंकार त्याग कर, हरिनाम में रत रह कर, अपने अंदर देखने से, यह दर्शन देता है। मनो वचन में, काय कर्म में तू तू तू ही "पुरंदर विठल", यह अनुभव होता है।

श्री पुरंदरदास के भजन

शुक्लांभरधर विष्णु शशिवर्ण चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशांतये ।।

सर्वविघ्न प्रशमनम् सर्व सिद्धिकरं परम् ।
सर्वजीव प्रणेतार वंदे विजयदं हरिम् ।।

नारायणाय परिपूर्णगुणार्णवाय,
विश्वोदय-स्थितिलयोन्नियति प्रदाय ।

ज्ञानप्रदाय विबुधासुर सौख्य दुःख,
सत्कारणाय वितताय नमो नमस्ते ।।

बुद्धिरबल यशोधर्म निर्भयत्वमरोगता ।
आजाड्यं बाक्पटुत्वंच हनुमत्स्मरणाद्भवेत् ।।

यो विप्रलंब विपरीतमतिप्रभूत
वादान्निरस्य कृतवान्भुवि तत्ववादाम् ।

सर्वेश्वरो हरिरिति प्रतिपादयंतम्
आनंदतीर्थमुनिवर्यमहं नमामि ।।

ज्ञान वैराग्य संपन्नम् भक्तिमार्ग प्रवर्तकम्
पुरंदरगुरुं वंदे दासश्रेष्ठं दयानिधिम् ।।

मन्मनोभिष्टवरदं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।
पुरंदरगुरुं वंदे दासश्रेष्ठं दयानिधिम् ।।

: १ :

हरिकथा महिमा ७. हरिभक्ति सुधा

[राग—नाट, झंपताल]

जहां हरि कथा प्रसंग हो
वहीं गंगा-यमुना-गोदा-सरस्वति-सिंधु
आकर होंगे सकल तीर्थ खड़े सन्नद्ध
वल्लभ श्री पुरंदर विठल प्रसन्न होगा ॥
जय जय हरि कहनेका ही सदिन
जय जय हरि कहनेका ही तारा-बल
जय हरि कहना ही चंद्र-बल
जय हरि कहना ही विद्या-बल
जय हरि कहना ही देवबल
जय हरि पुरंदर विठल ही बल है सुजनोंका ॥

: २ :

गणपति वन्दना ६. पु० की ० भा० १.

[राग—धनश्री आदिताल]

गजवदना मांगु मैं । गौरिके तनय ॥प०॥
त्रिजगवंदित हे सुजनोंके रक्षक ॥अ०प०॥
पाशांकुश धर परम पवित्र
मूषक वाहन मुनि जन प्रेम ॥१॥
मोदसे अपने चरण दिखाओ
साधु सु-वंदित आदरसे नित ॥२॥
सरसिज नाभ पुरंदर विठल
सतत स्मरण हो, ऐसी कृपा करो ॥३॥

: ३ :

सरस्वती स्तवन ७२. पु० की० भा० ४

[राग—वसंत आदिताल]

दे मुझे दिव्य मती सरस्वती दे मुझे दिव्य मती ॥प०॥

[1]मृड-हरि श्रीमुख[2] स्वामिनी तेरे
चरण स्मरण करूं ब्रह्मकी रानी ॥अ०प०॥

इन्दिरा-रमणकी जेष्ठ वधू तू
आकर वाणीसे नाम कहालो ॥१॥

अखिल विद्याभिमानी अज[3] की पट्टकी रानी
सुखसे पालन कर सुजन शिरोमणि ॥२॥

पतित पावन तू ही गति मानके
सतत पुरंदर विठल दिखारी ॥३॥

---

१. शिव

२. सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री है। कला और साहित्य सरस्वती का व्यक्त रूप है। शिव और विष्णु ये दोनों देवता कला और साहित्य के आचार्य हैं! कृष्ण योगेश्वर हैं, शिव योगीराज, कृष्ण ललित नृत्य के आचार्य हैं और शिव तांडव नृत्य के। कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया शिवने आगम-शास्त्र का। इसलिए वे विद्या का मुख है! विद्या उनके मुख से प्रकट हुई है।

३. ब्रह्म

: ४ :

गुरु कारुण्य १४, ह० भ० सु०

[उगाभोग[1]]

होना गुरु कारुण्य परम दुर्लभ है रे
भांति-भांतिके व्रथाचरणसे क्या फल है
गुरु कारुण्यके बिना अन्य गति है क्या रे
शरीरके पुत्र मित्र कलत्र बांधव सारे
होंगे क्या तव सद्गतिके साधन सहारे
निशि-दिनमें गुरु-पाद-पद्म ही गति है रे
यह जान भजरे तू अखिल सपत्ति देके
पालन करेगा यह पुरंदर विठल ॥

: ५ :

हनुमत्स्मरण २०१ पु० की० भा० १.

[राग—कांबोज रुपताल]

मुख्य-प्राण[2] ही मेरा मूल गुरु है ॥प०॥
राक्षसांतक श्री राम का निजदास ॥अ०प०॥

माता पिता तू है बंधु बांधव तू है
नित्य प्रति भक्तोंका रक्षक भी तू है ॥१॥

तात कर्ता तू है वित्त विभव ही तू है
सत्य तू है सदाचार तू है ॥२॥

सुख सुलभ ही तू और एकांत गुरु तू है
पुरंदर विठलका निजदास तू है ॥३॥

---

१. उगाभोग कर्नाटक संगीत अथवा श्री पुरंदर संगीत का एक वैशिष्ठ्य है। इसमें "पल्लवी" "अनुपल्लवी" नहीं होती।

२. वासुदेव

: ६ :

गुरु वंदन ४, हु० भ० सु०

[राग—पन्तुगावलि आदिताल]

मध्व-मुनि है गुरु मध्व-मुनि है ।
मध्व-मुनि सबका उद्धारक है मध्व-मुनि ॥प०॥

पहले हनुमन्त बनके श्री रामके चरण
कमल रत बनके हो गए मोदमें मगन ॥१॥

एणांक[1] वंशाब्धि सोम क्षोणि पालक शिरोमणि
हो श्री हरिके प्राणाधिक प्रिय भक्त राज बना ॥२॥

अंतमें दृढ़योगि बन अभी श्री पुरंदर
विठल वेद-व्यासका पट-शिष्य बना ॥३॥

[**टिप्पणी**:—कन्नड भाषा के वैष्णव अनुभावी सब मध्वानुयायी है । वे सब श्री मध्वाचार्य को अपना आदि गुरु मानते है । मध्व-मत में वायु देवका महत्व-पूर्ण स्थान है । गुरु स्थान मे वायुदेव की प्रतिष्ठा की गई है । श्री मध्वाचार्य वायुदेव के तीसरे अवतार माने जाते है । उनका पहला अवतार श्री हनुमान जी, दूसरा भीम, तीसरा श्री मध्वमुनि ।]

---

१. चन्द्रवंश

: ७ :

लक्ष्मी स्तवन २११: पु० की० भा० १.

[राग—मध्यमावती आदिताल]

भाग्यकी लक्ष्मी आओ मा, मेरी मा तुम,
सौभाग्यकी लक्ष्मी आओ मा ॥प०॥

नूपुर पग रव मधुर सुना कर,
श्रीपद पग पग पग बढ़ा कर
सुजन साधुकी पूजा में तुम
दधि पयमें स्थित नवनीत सरीखी ॥१॥

कनक-वृष्टि तुम करती आओ
मनको मानव-सिद्धि दिखाओ
कोटि-कोटि रवि तेज प्रभासित
जनक राज तनया तुम आओ ॥२॥

नित अचलित हो भक्त सदनमें
नित्य महोत्सव नित्य सुमंगल
सत्य दिखा कर साधु सुजनके
चितमें उदित नित रत्न-प्रभासी ॥३॥

अगणित अमित भाग्य देकर मा
कंकण करका अभय दिखा कर
कुंकुमांकिता कमल लोचना
प्रिय वामांगी वेंकटेशकी ॥४॥

मधु-घृत-पयकी नदी बहा कर
भृगु-वासरकी प्रति-पूजामें
करुणामय श्री पद्मनाभकी
पुरंदर विठल मोहिनी रानी ॥५॥

: ८ :

गुरु उपदेश की अनिवार्यता

ह० भ० मु० १३०

[मुलादि[1], ध्रुवताल]

गुरु उपदेश रहित ज्ञान
गुरु उपदेश रहित योग
गुरु उपदेश रहित क्रिया
कर्म सर्पका उपवास सा व्यर्थ रे !
गुरु व्यासरायने करुणासे मुझको
वर महामंत्र दिया उपदेश रे।
पुरंदर विठल ही पर दैव है
कह कर किया मुक्त इस भव भयसे ।।

जोड़

गुरु व्यासरायके चरण हैं मम गति
पुरंदर विठलको देखा इनसे मैंने ।।

१. कर्नाटक संगीत में अथवा पुरंदर संगीत मे "मुलादि" अत्यन्त प्रौढ़तम कृतियां हैं, ऐसा संगीतज्ञो का कहना है। कहते है कि मुलादि गाने वाले संगीतज्ञ विरले ही हैं।

: ६ :

दया की पुकार ३३ पु० की० भा० ६

[राग—मध्यमावति आदिताल]

दया करो, दया करो दया करो रंगा ।
दया करो अपना दास मान कर ।।प०।।

बहु समयसे तव स्मरण है मुझको
प्रेमसे देखो श्री वारिज नाभा ।।१।।

इह पर गति तू है इंदिरा रमण ।
सहारा सदा तेरा करो स्वामी करुणा ।।२।।

करिराज वरद हे कामित फलद
पुरंदर विठल हरि सार्व-भौमा ।।३।।

[टिप्पणी:—श्री मध्वाचार्य प्रणीत ब्रह्म संप्रदाय की भक्ति दास्य भक्ति है। भक्त और भगवान में सेव्य सेवक भाव है । इसीलिए श्री मध्वाचार्य मानते हैं कि जीव की मुक्तावस्था में भी यह भेद नहीं मिट सकता । सेवक कभी स्वामी से अभिन्नता का अनुभव नहीं कर सकता ।]

: १० :

मेरा स्वामी ९७ पु० की० भा० १८ मा

[राग– शंकराभरण अटताल]

यह मेरा स्वामी । जगदंतर्यामी ।।प०।।

अंदर देखो अपने । बैठा है पर-ब्रह्म ।
मिटाओ अहम् अपना । जानो यही धर्म ।।१।।

वस्तु छोड़ देखो । स्वस्थ मनन करके ।
सर्वत्र जा सबसे मिल देखो ।।२।।

पाकर गुरु-प्रेम । करो हरि-ध्यान ।
पाओगे पुरंदर । विठलका दर्शन ।।३।।

: ११ :

मेरी वृत्ति ८० पु० की० भा० २

[राग –भैरवी आदिताल]

मधुकर वृत्ति है मेरी ।
वह है अतिशय प्यारी प्यारी ।।प०।।

पद्मनाभ पाद पद्मका मधुप मैं ।।अ० प०।।

पदमें नूपर बांध घनशामके गुण
गान-कथा-रत नृत्य करनेकी ।।१।।

रंगनाथके गुण अथक गा-गा कर
लखके शृंगार दर्शन मोदमें रत ।।२।।

इंदिरापति श्री पुरंदर विठलमें
मोदसे भक्तिका आनंद लेनेकी ।।३।।

: १२ :

मेरा अनुभव १८२ हृ० भ० मु०

[राग—मध्यमावति आदिताल]

गोविंद गोविंद अति आनंद ॥प०॥
सकल साधन तव आनंद ॥ अ० प०॥

अणुरेण् तृणकाष्ट परिपूर्ण गोविंद
विमलात्म होकर रहनेमें आनंद ॥१॥

सृष्टि स्थिति लय कारण गोविंद
महिमानुभव यह होना ही आनंद ॥२॥

मंगल महिम श्री पुरंदर विठलके
सहज-भजन-रत रहनेमें आनंद ॥३॥

: १३ :

यंत्र मिला ३२, पु० की० भा० ३

[राग—शंकराभरण एकताल]

यंत्र मिला योग यंत्र मिला रे ॥प०॥

यत्र वाहक नारायणके अंतरंगमें स्मरणका ॥अ० प०॥

आशामें कभी डूबेगा ना क्लेशमें कभी मिटेगा ना ।
वासुदेव कृष्ण हरिका शाश्वत वह दिव्य-नाम ॥१॥

बिछा सकते ओढ़ सकते खाके पेट भर भी सकते
दासोंका रक्षक नित्य नारायणका दिव्य नाम ॥२॥

एक बार स्मरण किया तो कोटि जपका फल प्राप्ति
इंदिरेश पुरंदर विठलका यह दिव्य नाम ॥३॥

: १४ :

तेरे ध्यान में रहते हुए २७ हृ० भ० मु०

[राग—पूर्वि त्रिपुटिताल]

मैं तेरे ध्यान में मगन रहा, हीन-
मानव क्या करेगा रे गोपाला ॥प०॥

मत्सर कर क्या करेंगे मुझपे
अच्चुतानंतकी करुणा रहने तक
सतत तेरा जप करते रहने पर
अग्निको घिरी हुई चीटियोंकी भांति ॥१॥ मानव क्या…

धूलमें घोड़ा नखरे कर नाचे तो
धूल भास्कर पर उड़ेगी क्या रे ।
सहनेके विरुद्ध क्या है कुछ लोकमें
हिलेगा हवासे क्या हिमालय वैसे ही ॥२॥ मानव क्या…

दर्पणमें धन देखकर चोरने
सेंद लगाई तो मिलेगा क्या वह
तेरी भक्तिसे पुरदर विठला
सुहागासा सोनेमें होगा सुंदर सब ॥३॥ मैं तेरे ध्यान में…

: १५ :

अंतर स्नान ८ पु० की० भ० ५

[उगाभोग]

बिना मन शुद्धिके मंत्रका फल क्या है ?
बिना तन शुद्धिके स्नानका फल क्या है ?
स्नानसे फल क्या उस मत्स मगर सा
वाससे फल क्या है श्री शैलके काग सा
बिन अंतर स्नानके बाह्य स्नानको देख
हंसता है रे वह श्री पुरंदर विठल ॥

: १६ :

भक्त ही भगवान है १२८ ह० भ० सु०

[राग—केदारगौल झंपताल]

देखो रे कल्प भूरुहरके जगमें
विष्णु-दास कभी नही है रे मानव ।।प०।।

क्षीरमें गिरे जलको नीर कह सकते क्या ?
नीरसे बना मोति नीर कहलाता क्या ?
माटीका मटका क्या माटी कहलाता है ?
हरि-शरण हरि-दास नर न कहलाता है ।।१।।

हरि-पादोदक जैसे तीर्थ कहलाता है
हरि-भक्ष अन्न प्रसाद कहलाता है
हरि-शरण हरि-दास नर न कहला करके
परमात्ममय नारायण रूप है रे ।।२।।

पर-ब्रह्म हरि है तो चर-ब्रह्म हरिदास
हरि कृपासे ही यह रहस्य खुलता है ।
धरणीमें पुरंदर विठलके दासको
नर कहने वालोंको रौरव नरक है ।।३।।

: १७ :

श्री तुम से नाम ही श्रेष्ठ है ४२ ह० भ० सु०

[राग— कानड़ा अटताल]

तू क्यों रे तेरी परवाह क्या ?
तेरे नामका बल हो तो पर्याप्त है रे ।।प०।।

मरा-मरा ध्यान मगन मनुजको
राम-राम इस नामने राखा ।।१।।

यमदूतोंने जब जकड़ा अजामिल
नारायणके नामने राखा ।।२।।

द्रुपद-सुताकी लाज लेत जब
बाल कृष्ण इस नामने राखा ।।३।।

मगरसे उलझ शरण गज आया
मूल पुरुष इस नामने राखा ।।४।।

पितसे पीड़ित बाल हुआ जब
नरसिंह इस नामने रखा ।।५।।

बालक ध्रुवराज वनमें गया तब
वासुदेव इस नामने राखा ।।६।।

तेरे नामके सम अन्य नहीं देखा
परम-पुरुष श्री पुरंदर विठल ।।७।।

: १८ :

तेरा नाम ४१ ह० भ० सु०

[राग — नादनामक्रिया झंपताल]

मैं हीन हूं तो तेरा नाम हीन है क्या विठल ॥प०॥

मैं वक्र हूं तो तेरा नाम वक्र है क्या विठल ॥अ० प०॥

नदीकी गति वक्र हो तो उदक वक्र है क्या विठल ॥१॥

सर्प वक्र हो तो उसका विष भी वक्र है क्या विठल ॥२॥

पुष्प वक्र है तो उसकी गध वक्र है क्या विठल ॥३॥

गाय काली हो तो उसका दूध काला है क्या विठल ॥४॥

धनुष वक्र हो तो देवा बाण वक्र है क्या विठल ॥५॥

शरण हीन हो तो तेरा नाम हीन है क्या विठल ॥६॥

अज्ञ हूं मैं रक्षा करो सुज्ञ पुरंदर विठल ॥७॥

: १९ :

कृष्ण स्तवन १४६ पु० की० मा० २

[राग—पीलु आदिताल]

नंद नंदन मुकुंद ॥प०॥

निगमोद्धार नवनीत चोर
खगपति वाहन जगदोद्धार ॥१॥

शंख चक्र धर श्री गोविंद
पंकज लोचन परमानंद ॥२॥

मकर कुंडल धर मोहन वेष
रुक्मिणि वल्लभ पांडव पोष ॥३॥

कंस मर्दन कौस्तुभाभरण
हंस वाहन पूजित चरण ॥४॥

वर बेलापुर[1] चेन्न प्रसन्न
पुरंदर विठल सकल गुणपूर्ण ॥५॥

---

१. मैसूर राज्य के बेलूर गांव में श्री चन्न केशव का मन्दिर है। होयसल राजा श्री विष्णुवर्धन ने वह बनवाया था। सुंदरतम शिल्प के लिए वह विश्व में प्रसिद्ध है, वहां गाया हुआ यह भजन है।

: २० :

सतत स्मरण १४८ पु० की० भा० २

[राग—असावरी अटताल]

नारायण तव नामकी महिमाका
सारामृत मेरी वाणीमें आवे ॥प०॥

रमते खेलते मोदमें हंसते
देखते प्रियसे बोलते समय भी
कुटिल भावसे इस जगमें किया कर्म
पाप ताप नष्ट होने जैसे प्रभु ॥१॥

लूके तापमें भी हिममय पालेमें
थर थर कांपते समय प्रभु तेरा
हरि नारायण दुरित निवारण
सतत यही नाम स्मरण होने जैसे ॥२॥

कष्ट हो या यदि उत्कृष्ट हो तभी
इष्टार्थ प्राप्त होने पर भी सारे
कृष्ण-कृष्ण मन-भीष्ठ नामका
अष्टाक्षरी मंत्र स्मरण होने जैसे ॥३॥

स्वप्नमें हो या जागरणमें हो
मन मलिन हो या तन दुखित हो
जनकजा पति तेरे नाम स्मरणके
मनमें सुखसे सतत स्मरण होने जैसे ॥४॥

सतत ही तव शतदश नाम मेरे
अंतरगमें गूँजने दो
संतत वरद श्री पुरंदर विठल
अंत्य कालमें तेरा स्मरण होने जैसे ॥५॥

: २१ :

स्मरण साधन ७१. पु० की० भा० ४.

[राग—बेहाग आदिताल]

कलियुगमें हरिनाम स्मरणसे
कोटि कुल उद्धार होगा ।।प०।।
सुलभकी मुक्तिको सरल जानकर
जलरुह-नाभका स्मरण करो ।।अ० प०।।

स्नान न जानु मै ध्यान न जानु मैं
मौन न जानु मैं ना कहो रे
जानकी वल्लभ दशरथनंद श्री
गान विनोदका स्मरण करो ।।१।।

भजन न जानु मैं पूजन न जानु मैं
यजन न जानु मैं ना कहो रे
अच्युतानंत गोविंद मुकुंदका
इच्छासे तुम नित्य स्मरण करो ।।२।।

जप न जानु मैं तप न जानु मैं
उपदेश ना मिला ना कहो रे
अपार महिम श्री पुरंदर विठलको
उपायसे तुम स्मरण करो ।।३।।

: २२ :

सब माटी　　२०० ह० भ० सु०

[राग – शंकराभरण अटताल]

मृत्तिकासे काया, मृत्तिका की माया ॥प०॥

मृत्तिका है सकल दर्शन
मृत्तिकासे वस्तु मात्र
मृत्तिका आधार सबका
मृत्तिका है भाई ॥१॥

खान पान भोजन माटी
रंग रूप धन सब माटी
मान अभिमान भी माटी
त्रिनयनका कैलास माटी ॥२॥

मदिर मठ घर द्वार भी माटी
महाराजाके गढ़ भी माटी
कुंभकारके मटके माटी
गंगाकी तहमें भी माटी ॥३॥

जीवनमें खाना भी माटी
मरने पर मिलनी भी माटी
विष्णुका वैकुंठ भी माटी
पुरंदर विठलका पुर भी माटी ॥४॥

: २३ :

नारायणनमन ४१० पु० की० भा० ३.

[राग—मध्यमावति आदिताल]

नारायण हे नमो नमो, भव
नारद सन्नुत नमो नमो ।।प०।।

मुरहर नगधर मुकुंद माधव
गरुड़ गमन पंकज नाभ
परम पुरुप भव भंजन केशव
नर-मृग शरीर नमो नमो ।।१।।

जलधि-शयन रवि चंद्र विलोचन
जल-रुह् भव नुत चरण युग
बलि बंधन गोवर्धनोद्धारक
कलि मल नाशक नमो नमो ।।२।।

आदि दैव सकलागमपूजित
यादव-कुल-मोहन-रूप
वेदोद्धार श्री वेंकट[1] नायक
पुरंदर विठल हे नमो नमो ।।३।।

---

१. श्री बालाजी तिरुपति क्षेत्र में स्थित विष्णु भगवान

: २४ :

विनय कैसे करुं ?

७३ ह० म० सु०

[राग—कांबोधि झंपताल]

विनय करनेमें प्रभु मुख नहीं है
अनंत अपराध मुझमें जब बस रहे ॥प०॥

शिशु मोह सती मोह जननि जनकोंका मोह
रसिक बंधुका मोह राज मोह
पशु मोह भू मोह बंधु वर्गका मोह
असुरारी मैं भूला तव चरण कृष्ण ॥१॥

अन्न मद अर्थ-मद अखिल वैभवका मद
तारुण्य रुप मद और कुलका मद जो
धात्री स्वामित्व मद धर्म अभिमान मद
मम सम नहीं कोई इस व्यर्थ मदसे ॥२॥

इतना पाया और इतना पाऊंगा यह
उतना मिलने पर भी और आशा
दुःख मुक्तिकी आशा सुख प्राप्तिकी आशा
नष्ट जीवन आशा पुरंदर विठल ॥३॥

: २५ :

तू ही रक्षा करो ७६ ह० प्र० सु०

[राग—बिलहरि अटताल]

किसका यहां कौन ऋणका है संसार
पानीका बुदबुदा अनित्य श्री हरि ।।प०।।

प्यासा था तब मैं कूप पर जो गया
कूप जल सूखकर मसान था श्री हरि ।।१।।

घाम लूसे बचने गया वृक्ष छाया में
वृक्ष टूटके सिरपे गिर पड़ा श्री हरि ।।२।।

वनमें घर बांधकर पेड़में झूलन बांधा
पालनेका शिशु खो गया श्री हरि ।।३।।

बाप हे पुरंदर विठल नारायण
राखरे श्री हरि मृत्युके समयमें ।।४।।

: २६ :

मेरा ही कर्म ७७ ह० भ० सु०

[राग—रेगुप्ति अटताल]

मेरा किया कर्म बलवान हो तो तू
करेगा क्या कह देव नारायण ॥प०॥

सामान्य नहीं है रे विधि लिखित लेखन,
नियमसे है जब मेरे ललाटमें ॥अ० प०॥

अतिथियोंको दिया ना अन्न और पर-
सतीका संग क्षण भर भी न छोड़ा
मति हीन होकर पगला बना था रे
गति कौन है मेरी गरुड़ वाहन कृष्ण ॥१॥

खान पानमें मैं सभीके आगे
स्नान जप तप नित्य-कर्म छोड़ा
दानवांतक तेरा स्मरण न करके
श्वानसा घर घर भटका मैं श्री हरि ॥२॥

निज दास जनका संग ही देके
रक्षा करो मेरी देव नारायण
और ना मांगू मैं आश्रय किसीका
पन्नग शयन श्री पुरंदर विठल ॥३॥

: २७ :

मैं तेरी शरण हूं ६३ पु० की० भा० १

[राग—कांभोज झंपताल]

देख देखके मुझे तज दोगे क्या ?
पुंडरीकाक्ष पुरुषोत्तम हरे ॥प०॥

बंधु मेरे नहीं जीवनमें सुख नहीं
निंदामें जल रहा हूं नीरजाक्षा
बंधुजन ही तू है आप्त इष्ट भी तू है
नित्य तव चरणमें शरण हूं कृष्ण ॥१॥

क्षण एक युग बनके तृणसे भी हीन बन
सह न सकता हूं इस भवके दुखको
सनकादि मुनि वंद्य वनज-संभव-जनक
भुजग शायी भक्त-रक्षक श्री कृष्ण ॥२॥

भक्त-वत्सल देव कहलाने पर हे प्रभु
भक्त-आधीन बन रहना है न ?
मुक्तिदायक तू है होन्नूर पुरवास
शक्त गुरु पुरंदर विठल श्री कृष्ण ॥३॥

: २८ :

दया नहीं आती ? १३५ पु० की० भा० १

[राग—कल्याणि अटताल]

दया न आती है क्या अब तक देवा
दया न आती है क्या ।।प०।।

पन्नग शयन क्षीराब्धि स्वामी कृष्ण ।।अ० प०।।

नाना देशमें और नाना कालमें और
नाना योनीमें जन्म लेके भटका
"मैं" और "मेरा" इस नरकमें पतित हो
तू ही गति मान शरण आए की ।।१।।

कामादि षड्वर्ग गाढ़ांधकारमें
पामर बने इस पातकीका
भुवन मनोहर चित्तजजनक हे
नाम ही गतिमान शरण आए को ।।२।।

मनसा वाचा काय कृत कर्म सब देव
दानवांतक तेरे आधीन थे
कुछ भी किया तो प्राण तेरे ही स्वामी
श्री नाथ पुरंदर विठलदास पर ।।३।।

: २६ :

शरीर नश्वर १६ ह० भ० सु०

[राग—भैरवी अटताल]

हर्ष ही क्या है रे इस देहका शोक भी क्या है रे ।।प०।।

पल भरमें खिल कर पलमें मुर्झाकर
अंतमें अग्निमें जलनेकी देहका ।।अ०प०।।

सती पति मिलकर रति क्रीड़ा करनेसे
पतित इंद्रिय-प्रतिमा रूपी देहका ।।१।।

सुख उप-भोगकी चाह करने वाले
भोगमें रत नष्ट होने की देहका ।।२।।

पर सेवा रत नरक भाजन होकर
फिर-फिर नष्ट होने वाली देहका ।।३।।

पुरंदर विठलके चरण कमलमें
नमन न करके भ्रमित बनी देहका ।।४।।

: ३० :

सतत चिंता ८४ हु० भु० सु०

[राग—पुंतुवरालि छापुताल]

सतत चिंता इस जीवको, इस
मनके माधवमें रत होने तक रे ।।प०।।

सती न होनेकी चिंता सती होने पर चिंता
कुरुपी होनेकी चिंता सुरुपी हो तभी चिंता
पिता बन कर पुत्र पोषणकी अति चिंता
जगतमें जहां देखो वहां सब चिंता ।।१।।

मिलने पर भी काम न मिलने पर चिंता
फिर भी वेतन न बढ़नेकी चिंता
ऋण लेनेकी चिंता वह देनेकी चिंता
त्रिभुवनमें चिंता विना कुछ नहीं है ।।२।।

घर होने पर चिंता न होने पर चिंता
गृह संसार न ठीक चलनेकी चिंता
अंतरंगमें नित पुरंदर विठलको
स्मरण किया तो निश्चित जीवन रे ।।३।।

: ३१ :

तू ही सब है

९८ पु० की० भा० २

[राग—पीलु अटताल]

अपराधी मैं नहीं दोष मेरा नहीं
कपट-नाटक सूत्र-धारी तू है ॥प०॥

तू खिला न सका तो जड़ भूतों-की गुड़िया
क्या खेल सकती है तू ही कह रे।
तव सूत्रमें बंध चलत है सब करण
तूने छोड़ा तो सब जड़ हैं रे कृष्ण ॥१॥

नव द्वारसे[1] सजे नगरको तू अपने
द्विदश षड् दासोंसे[2] घेर करके
उसमें मुझको बंदि रख करके इस भवमें
जन्म मृत्युसे छलना अन्याय है रे ॥२॥

यंत्र चालक तू है हृदयस्थ बन करके
मुझको स्वतंत्र तू कहता है कैसे
मदन पित लक्ष्मीश सूत्र-धारक तू है
विश्व चालक देव पुरंदर विठल ॥३॥

---

(१) नवद्वार से सजा नगर—देह

नवद्वार—दो आंखें, दो कान, दो नासापुटी, मुख, गुदा, उपस्थ।

(२) द्विदशषड्दास—मन, बुद्धि, अहंकार; तीन गुण—सत्त्व, रज, तम; पाँचज्ञानेन्द्रियाँ—आंख, कान, नाक, रसना, त्वचा; पांच कर्मेन्द्रियां—हाथ, पैर, वाणी, गुदा, उपस्थ; पंच तन्मात्राएं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध; पंच महाभूत—पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश।

जीव इनसे घिरा रहता है। इन सबसे घिरा हुआ जीव अपने को शरीर से अभिन्न मान कर बद्ध बनता है। बद्ध जीव जन्म, मरण के चक्र में फिरता रहता है। मुक्त नहीं होता।

: ३२ :

अपमान होना ही अच्छा　　　　८६ ह० भ० सु०

[राग—पूर्वि अटताल]

अपमान होना भला
अपरुप हरिनाम जप लीन मनुजका ।।प०।।

मानसे अभिमान बढ़ जाएगा, अभि
मानसे तप हानि हो जाएगी
मानी दुर्योधनकी हानि हुई अनु-
मान नहीं सम मानापमानको ।।१।।

अपमानसे तप बढ़ जाएगा
अपमानसे पुण्य सफल होगा
अपमानसे नृप ध्रुवरायको जैसे
कपट नाटक विष्णु अपरोक्ष था हुआ ।।२।।

मैं क्या करूं कहां जाऊं किसके पास
कमल नयन हरि तू जब है
मुनि-जन रक्षक पुरंदर विठल
मै मांगूगा केवल अपमान ही ।।३।।

: ३३ :

·पश्चात्ताप

८८ हु० भ० सु०

[राग कांबोधि झंपताल]

दास कैसा बनुं इस जगतमें मैं
वासुदेवमें लेश भक्ति मुझमें नही ।।प०।।

मोटे नाम लगाके गोल लोटा पकड़
चौडी किनारकी मडि[1] पहन के
दूर पैर रखते[2] आनेसे लोग मेरे
पाखंड देख कर धोखेमें आते हैं ।।१।।

अर्थमें मन मेरा आसक्त है सदा
व्यर्थ है विश्वमें जीना मेरा
आर्त हो हरि स्मरण ना किया मैंने कभी
सत्य शौचसे दूर हूं सुजन सुनरे ।।२।।

इदिरेशकी पूजा ना कभी की मैंने
स्नान-संध्या पूजा जप-तप न जानता
एक ही साधन मैं पुरंदर विठलके
चरण-कमलकी भक्ति जानु तब ही ।।३।।

१. शुद्ध धौत वस्त्र।

२. कन्नड़ भाषा में ब्राह्मणों को "हारुवरु" कहते है। इस शब्द का अर्थ है— उड़नेवाले, उछलनेवाले। ब्राह्मण सदैव अपने शुचित्व के विचार से रास्ते पर साफ जगह देख कर वहां पैर रखने के अभ्यस्त से होते हैं। इससे लोग उनको हारुवरु कहते हैं। इसी का बोध "दूर पैर रखते आने से" है।

: ३४ :

तू ही रक्षक है ६५ ह० भ० सु०

[राग—आनंदभैरवी अटताल]

तू ही दयालु निर्मल चित्त गोविंद
निगम गोचर मुकुंद ।।प०।।

ज्ञानियोंके राजा तेरे बिना जगकी
मान से रक्षा करने वाला ना देखा ।।अ० प०।।

दानवांतक दीन जनका आधार तू
ज्ञानियोंके मनका आवास तू
मौन हुआ तव ध्यानानंदमें, मुझे
सानुरागसे देखो सनकादि-वद्य हे ।।१।।

भांति-भांतिसे तेरा स्तवन करूंगा मैं
खगपति वाहन रे
बालककी बात यह प्रेमसे सुन कर
वेगसे आओ तू सागर-शयना ।।२।।

मंदर धर अरविंद लोचन तेरे
बालक कहलाऊं मैं
समय क्या है अब स्वामी श्री मुकुंद
स्वीकार कर मेरा पुरंदर विठल हे ।।३।।

: ३५ :

मुक्ति के लिये ११६ ह० भ० सु०

[राग—धनासि अटताल]

यों ही मिलती क्या मुक्ति, मनुजा ॥प०॥

हीन विषय दूर करना दृढ़
मनसे संसारमें निर्लिप्त रहना
संदेह सब छोड़ देना, अपना
तन धर्म कार्यमें अर्पण करना ॥१॥

पाप कोप छोड़ देना, सतत
गोपाल कृष्णका स्मरण है करना
तपसे न डर कर रहना, भव
सागर तरनेमें गुरु-शरण जाना ॥२॥

देह-भाव छोड़ देना, अपनी
देह-अनित्यका अनुभव करना
परकी साधना करना, हरि
पुरंदर विठलमें विश्वास करना ॥३॥

: ३६ :

अंतर्दृष्टि से देखना

१०४ ह० भु० सु०

[राग—काफी छापुताल]

आंखोंसे देखो श्री हरिको ज्ञान
दृष्टिसे देखो सर्वत्र हरिको ।।प०।।

आधार आदि षड्चक्र
शोधन कर छोड़ो ईष्णा त्रयको
साधन कर सुषुम्ना
भेदन कर वहां देखो पर-ब्रह्मको ।।१।।

अनिमेष दृष्टिसे देखो
प्राणापानको पूर्ण बधन करके
अन्तर्नाद तुम सुनके
नव-विधभक्तिसे भजरे श्री हरिको ।।२।।

अण्डमें वह खेलता है
ब्रह्मांडमें नारायण कहलाता
कुण्डलीके छोरमें बसता
जगके रक्षक श्री पुरंदर विठलको ।।३।।

[**टिप्पणी**—इस भजन में योगकी प्रणाली से भक्ति का रहस्य समझाया है। भारतीय जीवन-साधना का परम लक्ष्य मोक्ष है। मोक्ष के लिए साक्षात्कार अनिवार्य है। साक्षात्कार के दो पहलू हैं। एक अपने में दूसरा विश्व में। अपने में जो साक्षात्कार होता है वह आत्म साक्षात्कार है। विश्व में जो साक्षात्कार करना है वह परमात्म साक्षात्कार है। एक स्वरूप-दर्शन, दूसरा विश्व-रूप दर्शन।

स्वरूप-दर्शन के लिए षड्चक्रों का शोधन करना होता है। ये छ: चक्र कुडलिनी के मार्ग में रहते हैं। जीव मातृ-कुक्षि में प्रवेश करते समय कुंडलिनी और प्राण-शक्ति के साथ प्रवेश करता है, अर्थात् कुंडलिनी का संबध प्राण-शक्ति के साथ है।]

कुंडलिनी के मूल में मूलाधार चक्र है। नाभि के साथ स्वाधिष्ठान चक्र है। उसके ऊपर मणिपूरक चक्र है। हृदय के पास अनाहद है। कंठ में विशुद्धाख्य चक्र है। भ्रूमध्य में आज्ञा-चक्र है। इन छः चक्रों का शोधन करना है। प्राणायाम से इन चक्रों का शोधन होता है। सतत नाम स्मरण का चरम-रूप अजपा-जाप है। जैसे हृदय का स्पंदन और श्वासोच्छ्वस सहज सातत्य से चलता है, वैसे ही अजपा-जाप सहज और सतत होता है।

शब्दोच्चारण एक प्रकार का स्पंदन है। स्पंदन प्राणायाम का सूक्ष्म रूप है। सतत-नाम-स्मरण से जो सूक्ष्म स्पंदन होता है, उससे अनायास प्राणायाम की प्रक्रिया होती है, अर्थात् भक्ति में जो विशिष्ट-नाम का सतत स्मरण चलता रहना है उससे शरीर में प्राण का विशिष्ट-रूप का स्पंदन होता रहता है, जिससे षड्-चक्रों का शोधन होता है। यह भक्ति-योग की सहज प्रक्रिया है।

यह हुई शरीर शुद्धि की प्रक्रिया किंतु भक्तियोग में प्रवेश के लिए जिसकी भक्ति की जाती है "उससे निष्काम निरतिशय प्रेम" की आवश्यकता है। इस निरतिशय प्रेम के लिए अन्य इच्छाओं का संपूर्ण त्याग आवश्यक है। इन प्रबल इच्छाओं को "एषणा" कहते है। इन एषणाओं का त्रिविध रूप है, १. पुत्रेषणा, २. वित्तेषणा, ३. लोकेषणा।

इस एषणा-त्रय के त्याग से ही जिसकी भक्ति की जाती है उससे निष्काम और निरतिशय प्रेम संभव हो सकता है। प्रेम की इसी निरतिशयता पर स्मरण का सातत्य निर्भर रहता है, इसलिए एषणा-त्रय का त्याग भक्ति की महत्त्व-पूर्ण शर्त है!

नाम स्मरण के सातत्य और उसकी तीव्रता से षड चक्रों का शोधन होते होते कुंडलिनी शक्ति (प्राणशक्ति का वाहक) जागृत होकर उपर की ओर बढ़ती है। वह सुषुम्ना का भी भेदन कर के सहस्रार में (ब्रह्म रंध्र में) जा वहां आत्मानुभूति होती है। वही ब्रह्म-दर्शन होता है।

इसका एक साधन प्राणायाम है अर्थात् मूल बंध युक्त पूरक से अपान, तथा जालंधर-बंध युक्त कुंभक से प्राण के समन्वय से अंतरनाद को सुनने का है तो दूसरा सतत हरि-स्मरण का है।

इससे कुंडलिनी के छोर में अंड में बसे हृदयस्थ का दर्शन होता है, और फिर ब्रह्मांड में बसे नारायण का विश्व-रूप दर्शन होता है!]

: ३७ :

मन निर्मल रखना

४७. पु० की० भा० ३

[राग—नादनामक्रिया छापुताल]

मनका शोधन करना, नित-नितके पाप पुण्यका लेखा ।।प०।।

धर्म अधर्मको अलग करके अ—
धर्म वृक्षकी जड़ छेदन करके
निर्मलाचरणसे युक्त पर ब्रह्म-
मूर्तिके चरण कमल शरण जाके ।।१।।

तनका खंडन कर स्थिर नित्य
मनको करो तब देखो आत्माको
अपनेमें अपनेको जानो, मुक्ति
तेरे हाथमें है जानो रे प्राणी ।।२।।

हरि-दासोंका नाश नहीं है, वह
पापी-पतितका संग न करता
नीति मानो सुनो बात, हमको
वही गति दाता पुरंदर विठल ।।३।।

: ३८ :

पाथेय १२८. पु० की० भा० १.

[राग—रेगुप्ति आदिताल]

पाथेय बांधोरे मनुजा पाथेय बांधोरे ।।प०।।

पाथेय बांधा तो कहीं भी खा सकते ।।अ०प०।।

धर्म नामके मटकेमें तू निर्मल मनकी गंगा भरके
निरहंकारिताकी अग्निसे तू अंहकारका अन्न पकाके ।।१।।

ज्ञान नामका कपड़ा बिछाकर वासनाका दही छानकर
परम वैराग्यसे कृष्णार्पण कर श्री हरिका प्रसाद मान कर ।।२।।

कर्ता पुरंदर विठल मान कर भक्तिका पाथेय बांध कर
मुक्ति पथ पर उसको साथ रख नित्य खाके तृप्त रहो रे, मनुजा।।३।।

: ३६ :

प्रभु की सर्व सुन्दरता ११६. ह० भ० सु०

[राग—कांबोधि झंपताल]

इस भांति सौंदर्य अन्य देवोंमें कहां
गोपीजन प्रिय गोपाल कृष्णके बिन ॥प०॥

राज्यत्वमें देखे भूदेवीके रमण
संपन्नतामें तो लक्ष्मी-रमण
वृद्धत्वमें स्वयं कमलोद्भवके जनक
गुरु जनोंमें वह जगदादि गुरु है ॥१॥

पावनत्वमें जो है अमर गंगा जनक
देवत्वमें वह है देवादिदेव
लावण्यमें देखें लोक मोहक रूप
धैर्यवंतोंमें असुरांतक ही है ॥२॥

आकाश संचारि गरुड़ ही वाहन है
विश्वधर शेष ही पर्यंक है
निगम गोचर पुरंदर विठलके बिना
अन्य देवोंको यह भाग्य कहां है ॥३॥

: ४० :

हरिसंकल्प १२१. ह० भ० सु०

[राग—पूर्वकल्याणि अटताल]

हरि चित्त सत्य हरि चित्त ।।प०।।

नर चित्तकी बात लवलेश ना होगी ।।अ०प०।।

सुसती सुत भाग्य चाहता है नर-चित्त
ब्याह बिना रखना हरि-चित्त है
घोड़ा गाड़ी पालकी चाहता है नर-चित्त
पदचारी रखना ही हरि-चित्त है ।।१।।

विविध स्थान यात्रा चाहता है नर-चित्त
शैया सेवी रखना हरि-चित्तमें है
मिष्टान्न नित्य प्रति चाहता है नर चित्त
उदरार्थ रोना ही हरि-चित्त है ।।२।।

विश्व-शासक बनना चाहता है नर-चित्त
पर-सेवा-रत रखना हरि-चित्तमें है
पुरंदर विठलको चाहता है नरचित्त
दरशन देना तो हरि चित्तमें है ।।३।।

: ४१ :

हरि सर्वस्व　　२६ पु० की० भा० २.

[राग—कांभोज अटताल]

सकल ग्रह बल तू है सरसिजाक्ष ॥प०॥

निखिल रक्षक तू है विश्व पालक हे ॥अ प०॥

रविचंद्र बुद्ध तू है राहु केतु ही तू है
कवि गुरु शनि और मंगल भी तू है
दिवस-रात्री तू है नव-विधान भी तू है
भव-रोग-हर तू है भेषज भी तू है ॥१॥

पक्ष मास भी तू है पर्व-काल भी तू है
नक्षत्र योग तिथि करण तू है
"अक्षय" कह के द्रौपदी-मान-रक्षक तू
पक्षी-वाहन दीन-रक्षक भी तू है ॥२॥

ऋतु संवत्सर तू है और युगादि भी तू है
क्रतु होम यज्ञ सद्गति भी तू है
जय हो मेरे स्वामी पुरंदर विठल
श्रुति-मुक्त अप्रतिम महिम तू है ॥

: ४२ :

मैं और तू १५५. पु० की० भा० २.

[राग—कांभोज अटताल]

मैं आगे कृष्ण तू मेरे पीछे
अनुदिन तव नाम स्मरण करूंगा मैं ॥प०॥

अनाथ हूं रे मैं मेरा बंधु है तू
हीन हूं मैं तू दयावान है
ध्यान मंत्र है तू ध्यानी सदा हूं मैं
ज्ञान-गम्य है तू अज्ञानी हूं मैं ॥१॥

कल्प-वृक्ष है तू फलाकांक्षी हूं मैं
काम-धेनु है तू कामार्थी मैं
वर चिंता-मणि है तू चिंता-रत हूं मैं
दया-सागर है तू दया-कांक्षी हूं मैं ॥२॥

मुझपे अवगुणके आवरण अनंत हैं
दास बन आया मैं तव द्वारमें
अंतरंगमें सदा वास कर तू मेरे
परम पावन श्री पुरंदर विठल ॥३॥

: ४३ :

प्रार्थना २१. पु० की० भा० १.

[राग—पूर्वी अटताल]

मैं तुझसे और न मांगूंगा, मेरे
हृदय कमलमें तू स्थिर हो रे स्वामी ।।प०।।

सिर तव चरणमें नत हो, मेरे
नयन सदा तुझे देखें श्री हरि हे
कर्ण तेरे गीत सुनलें, नित्य
निर्माल्य घ्राण सेवन करलें हरि ।।१।।

वाणीको तव यश गाने दें, मेरे
कर दोनों तेरी सेवामें रत हों
पाद तीर्थ यात्रामें चलें, मेरा
मन अनुदिन तेरे स्मरण भगन हो ।।२।।

बुद्धि तुझमें लीन होने दें, मगन मेरा
चित्त सदा तुझमें स्थिर हो रे स्वामी
भक्त-जनका संग होने दे, सदा
पुरंदर विठल तू इतनी दया कर ।।३।।

: ४४ :

दास बना लो १२८ ह० भ० सु०

[राग—नादनामक्रिया अटताल]

दास बना लो मुझे, स्वामी
सहस्र नामके वेंकट-रमणा ।।प०।।

दुष्ट बुद्धिसे मुझे मुक्त करके तव
करुण-कवच मेरे तनपे चढ़ाकर
चरण-सेवा भाग्य दे इस दासको
अभय करो स्वामी वेंकट-रमणा ।।१।।

दृढ़ भक्ति चरणमें देकर सतत
चरण मगन रहूं ऐसी कृपा कर
चित्त शुद्ध मेरा करके दास तव
बनालो मुझे वेंकट रमणा ।।२।।

शरणागत रक्षा प्रतिज्ञा है तेरी
चरण शरण आया रक्षा करो स्वामी
दुरित मिटा कर करुणा कर हे
पुरंदर विठल रक्षा करो स्वामी ।।३।।

: ४५ :

कब गले लगाऊं ६६० पु० की० भा० २

[राग—भैरवी अटताल]

कभी गले लगाऊंगी मैं, श्रीरंगको, कभी गले लगाऊंगी मैं ।।प०।।

कभी गले लगाऊंगी कभी प्यार करूंगी ।
तोतली बातें सुन कभी थकूंगी मैं ।।अ०प०।।

सुंदर नूपुर झुन-झुन कर वह
डुलते चलने वाले कृष्णके चरण ।।१।।

स्वर्णके कटि बंध और वह मुद्रिका, अरुण
चरण वह बाल मुकुंदके ।।२।।

तुलसी मंजिर हार और मोती माला
गलेमें धरे हुए जान्हवी जनकको ।।३।।

भागवतोंके पित्र रूप होके स्वयं
बालक रूपके मुरलीधरको मैं ।।४।।

सृष्टिमें सुजनोंके रक्षक बन कर
दुष्ट-नाशक श्री पुरंदर विठलको ।।५।।

[**टिप्पणी**—कन्नड भाषा में प्रथम पुरुष तथा द्वितीय पुरुष सर्वनाम का प्रयोग करते समय, कर्त्ताके लिंगानुसार क्रिया-पद में कोई परिवर्तन नहीं होता जैसे अंग्रेज़ी में। इसलिए वात्सल्य-भाव तथा मधुरा-भाव में कर्त्ताके लिंग का कोई बोध नहीं होता, अथवा समान बोध होता है। किंतु हिंदी भाषा में कर्त्ता के लिंगानुसार वाक्य विन्यास में परिवर्तन आ जाता है। इसलिए इन भजनों में स्त्री लिंगी प्रयोग—आत्मा को स्त्री लिंगी मान कर—किया है। यदि ऐसा न किया जाता तो वात्सल्य भाव तथा मधुर-भाव का बोध नहीं होता।]

: ४६ :

खेलने मत जाओ १६० पु० की० भा० २

[राग—पंतुवरालि आदिताल]

खेलने ना जाओ रे, रंगय्या, विनय करती हूं रे ।।प०।।

लीलाधारियोंसे लीलामें ना डूबो
भांति-भांतिसे तुम्हें कष्ट देंगी वह ।।अ०प०।।

जलमें डुबोएंगी रे, पीठ पे तेरी
पहाड़ चढ़ाएंगी रे।
लंबी डाढ़से खेल कर हराएंगी रे
आंतोंका हार पहनाएंगी रे ।।१।।

बाल रूप कहेंगी, बाबा रे
परशु हाथमें देंगी रे।
त्रिनयन रुद्रके वरद-दश कंठका
संहार कराएंगी रे रंगय्या ।।२।।

नवनीत-चोर कहेंगी, स्त्रियोंका
व्रतभंग किया कहेंगी।
छोटे घोड़े पे चढ़ कल्किरूप बन
पुरंदर विठल तू आ कहेंगी ।।३।।

: ४७ :

कृष्ण को बुलाना १३ पु० की० भ० ६

[राग—कांभोज एकताल]

यादव तू आ यदु कुल नंदन
माधव मधुसूदन आ रे ।।प०।।
सोदर मामाको मथुरामें मारे
यशोदा नंदन तू आ रे ।।अ०प०।।

शंख चक्र तव हाथमें धर कर
सुंदर गोप-कुमार आ रे
अकलंक महिम हे आदि नारायण
भक्त-रक्षक श्री हरि आ रे ।।१।।

पदके नूपुर झुन-झुन-झुन कर
वेणु बजावत तू आरे ।
गेंद गुल्ली डंडा आदि खेलते
गोप बालोंसे मिल तू आ रे ।।२।।

खगवाहन हे अनंत रूप
हास्य वदन राजा तू आ रे
जगमें तेरी महिमा गाऊं मैं
पुरंदर विठल तू आ रे ।।३।।

: ४८ :

बाहर न जा १११ पु० की० भा० २.

[राग--शंकराभरण अटताल]

ना जाओरे रंगा देहरीके बाहर
भागवत देखें तो ले जाएगे तुम्हें ।।प०।।

सुर नर मुनि हृदय मंदिरमें अपने
परम-पुरुषको न देखनेसे
अप्राप्त वस्तु हमें प्राप्त हुई मानकर
हरषातिरेकसे ले जाएगे तुम्हें ।।१।।

अगणित गुण सब जगकी नारियां तव
अरि हो बोलती हैं गोपाल रे
बाल मणि यह मिला हमें मानकर
शीघ्र आकर पकड़ ले जाएंगी तुम्हें ।।२।।

धृष्ट नारियां सब इष्ट पूर्तिके लिए
पीछे पीछे तेरे आती हैं रे
सृष्टीश पुरंदर विठल राजा मेरे
अति मधुर नवनीत देऊंगी आओ रे ।।३।।

: ४९ :

कौन लेने आई १३४ पु० की० का० २.

[राग—शंकराभरण छापुताल]

कौन है रंगको लेने आई मेरे
कौन है कृष्णको लेने आई ।।प०।।

गोपाल कृष्णको पाप-विनाशको
इस भांति कौन है लेने आई ।।१।।

वेणु-विनोदको प्राणोंके प्रियको
ज्ञान-विलोलको लेने आई ।।२।।

कविराज वरदको परम-पुरुषको
पुरंदर विठलको लेने आई ।।३।।

: ५० :

विलक्षण बालक १४८. हु० भ० सु०

[राग—पंतुवरालि आदिताल]

बालक देखा है क्या ज्ञानियो तुमने बालक देखा है क्या ॥प०॥

शत दश नामका शत कोटि तेजका
सुख मय रूपका बालक देखा है क्या ॥अ० प०॥

ज्ञान-समुद्र-क्रीड़ा-रत बालक
ज्ञानीके हृदयमें दर्शित बालक
दीन-दासोंका रक्षक बालक
अपनी महिमाका ज्ञानी जो बालक ॥१॥

भुवन-मंडल सब दर्शक बालक
आत्म-भक्त-मन-रंजक बालक
आकार रहित साकार बालक
साकल्य दृष्टि अगोचर बालक ॥२॥

तन-मन-धनमें विराजित बालक
त्रिभुवन विश्व-आधार जो बालक
बुद्धि-मंडल सीमोलंघित बालक
चिन्मय पुरंदर विठल बालक ॥३॥

: ५१ :

वह मटकी ४९ पु० की० भा० १.

[राग—सौराष्ट्र छापुताल]

ला अम्मा मटकी पानीको जाऊंगी, लारी तू मटकी ॥प०॥

मटकी टूटी तो एक ही पैसा है लारी तू मटकी ॥अ० प०॥

राम नामके मधुर पानीको जाऊंगी लारी तू मटकी
कामिनियोंके संग एकांत खेलूंगी लारी तू मटकी ॥१॥

गोविंद नामका मधुर पानी भरने लारी तू मटकी
अनेक ढंगके अमृत-पानको लारी तू मटकी ॥२॥

बिंदु माधवके घाट पे जाऊंगी लारी तू मटकी
पुरंदर विठलको अभिषेक करुंगी लारी तू मटकी ॥३॥

: ५२ :

बाल कृष्ण १७३ पु० की० भा० २

[राग—सौराष्ट्र अटताल]

किसका लाल है री यह किसका लाल है री ॥प०॥
उखल खींच-खींच घुटनोंके बल सरक-सरक आता है री ॥अ० प०॥

छोटी सी जटा सिर पे बांधी है माथे पे आए घुंघराले बाल।
हीर हार कौस्तुभ मणि तुलसी माला गलेमें धर करके ॥१॥

गलेमें व्याघ्र-दंत तिलक चंदन और कस्तूरीका करके
देवोपम दिव्य रूप मधुरता सयं छलक कर आई ॥२॥

करुणा-कर किरि-वरद श्री नर हरि पुरंदर विठल
परम-भागवत-घर यह सरक सरक आता है री ॥३॥

: ५३ :

जो जो श्रीकृष्ण २२१ पु० की० भा० १.

[राग—शंकराभरण त्रिपुटीताल]

जो जो श्री कृष्ण परमानंद
जो जो गोपीके कंद मुकुद ॥प०॥

क्षीर-समुद्रमें वास तेरा है
वट-पत्र पर एक तू सोया है
कोमलांगियोंके मनो-वल्लभ हे
बालक मैं तुझे झुलाती हूं रे ॥१॥

नव-रत्नोंके पालनेमें तुझे
सुला कर मैं झुलाती हूं रे
रोना ना मेरे प्यारे मुकुंद श्री
कमल-नाभ कृष्ण झुलाती हूं रे ॥२॥

किसका बालक तू मैं न जानु रे
किसका रत्न तू किसका माणिक तू
मिला मुझे चिंता-मणि मानकर मैं
प्यारे तुझे सतत झुलाती हूं रे ॥३॥

गुण-निधि मैं तुझे गोदमें ले फिरु
कौन करेगा गृह-कार्य मेरा
मन शांत कर सुख निद्रा-रत हो रे
मैं झुलाती हूं रे फणिशायी मेरे ॥४॥

अंडज-वाहन अनंत महिम
पुंडरी-काक्ष श्री परम पावन
देव देवेश श्री बाल-मुकुंद,
मैं झुलाती हूं रे पुरंदर विठल ॥५॥

: ५४ :

जो, जो २३८ पु० की० भा० २.

राग—शंकराभरण अटताल

जो जो जो जो जो साधुवंत
जो जो जो जो जो भाग्यवंत
जो जो जो जो जो गुणवंत
जो जो जो जो श्री लक्ष्मी-कांत ।।प०।।

भक्तावत्सल भय-हर रे जो जो
कृत्ति-वास-प्रिय कृष्ण हे जो जो
मुक्ति-दायक मुर-हर हे जो जो
चित्त-चोर परम-पुरुष हे जो जो ।।१।।

करुणा-कर करि-वरद हे जो जो
सुर-नर-मुन-वंदित हे जो जो
गरुड़-वाहन नग-धर हे जो जो
खर दूषण संहारक हे जो जो ।।२।।

वारिजाक्ष विश्व-पालक जो जो
वारिधि-शयन नर-हरि जो जो
घोर दुरित संहारक जो जो
नारायण नर-हरि श्री जो जो ।।३।।

मंदर-धर माधव हे जो जो
नंद-कंद-मुकुंद रे जो जो
इंदिरा-रमण गोविंद जो जो
सिंधु-बंधन रामचन्द्र हे जो जो ।।४।।

चक्र-धारि चतुर्भुज हे जो जो
शक्र-तनय सख देव हे जो जो
अक्रूर-वरद अजात हे जो जो
वरद श्री पुरंदर विठल जो जो ।।५।।

: ५५ :

भूत आया १०१ पु० की० भा० ३

[राग—पंतुवरालि एकताल]

भूत आया है रे कृष्ण भूत आया है ॥प०॥
दूध पी के तू चुपके सो जारे, ॥अ० प०॥

चार मुख[1] का एक भूत
गोकुलको दौड़ आया
लोगोंको पकड़ करके
पगलाए ले जाता है रे ॥१॥

पांच मुखोंका[2] एक भूत
तीन आंखोंका वह भूत
गांव-गांव भटक आया
बच्चोंको ले जाता है रे ॥२॥

तन सारा नयन है जिसके[3]
सजाए मुखका वह भूत
सोने-से प्यारेको मेरे
ले जाने आया है रे ॥३॥

छ मुखोंका[4] एक भूत
बारह आंखें हैं जिसकी
रोते बालोंको वह
ले जाने आया है रे ॥४॥

पेड़ पे है बैठा एक
कराल मुखका भूत
तुमको वह पकड़ लेगा
पुरंदर विठल मेरे ॥५॥

---

१. ब्रह्मदेव, २. शंकर, ३. इंद्र, ४. षण्मुख स्वामी

: ५६ :

प्रेम का आशीष १४१ हृ० भ० सु०

[राग—मध्वमावति आदिताल]

प्रेमसे गोपीने आशीश दिया
तैलाभ्यंग कर यदुकुल तिलकको ॥प०॥

आयुष्मान हो ज्ञानवान हो
धीर-वीर अति बलशाली बन
सज्जन-पालन दुष्ट-भंजन कर
त्रिभुवनमें तू नित्य वंदित हो ऐसा ॥१॥

धीर होकर तू दयांबुधि भी हो
रुक्मिणिका तू हृदय-स्वामी बन
कंदर्प-पित बन मधुसूदन बन
द्वारकापुरका महास्वामी बन ऐसा ॥२॥

आनंद तू बन अच्युत तू बन
दानवांतक औ' दयावान बन
श्री-निवास औ' श्री-निधि बनकर तू
ज्ञानी पुरंदर विठल बन ऐसा ॥३॥

: ५७ :

यह कैसा बच्चा ६० पु० की० भा० १.

[राग—मोहनकल्याणि अटताल]

बालक है क्या यह, मेरे हाथ
न आके भागता है ।।प०।।

मां होनेका मर्म सखीरी मुझसे यह
पूछता है आके एकांतमें पकड़ ।।अ० प०।।
पनघट जाते हुए, खड़ा यह
एकांतमें बुलाके
राह रोक कर समरस मांगके
अंचल पकड़ खड़ा रहता है ।। १ ।।
दही मथनके समय, पिछेसे आके
आंख मुंचाई करके ।
माखन मांगके कुच पकड़ कर मेरे
हंस-हंस कर सारे करता प्रणय यह ।। २ ।।
नींदमें मैं तब थी, पति मान
निर्बुद्ध हो मिली मैं
जग कर इसका हाथ पकड़ देखा
मुद्दु[1] श्री पुरंदर विठल स्वयं था ।। ३ ।।

---

१. मुद्दु—सुंदर; कन्नड़ भाषा में "सौंदर्य" भावना को व्यक्त करने वाले अनेक शब्द हैं और प्रत्येक शब्द उस भावना का विशिष्ट बोध कराता है। सौंदर्य की भिन्न-भिन्न कलाओं को समझने के लिये हम "सौंदर्य" सजीव मान लें।

सौंदर्य का जन्मकाल, शैशव, मुद्दु है। मुद्दु=चुंबन, मुद्दु सुंदर, चुंबनीय सौंदर्य=मुद्दु, मुद्दु-सुंदर का चुबन, शृंगार भाव नहीं वात्सल्य भावका बोधक है।

केवल छोटे शिशु के सौंदर्य वर्णन में ही "मुद्दु" विशेषण लगता है। तथा छोटा शिशु ही अपनी सौंदर्याभिव्यक्ति के लिए "मुद्दु" कहता है।

इस भजन में कवि ने "मुद्दु" शब्द प्रयोग से शृंगार को वात्सल्यमय बना दिया है !!

कन्नड़ भाषा में "मुद्दु" शब्द की भांति चंद, चलुव, चलुवे, सोबगु, बेड़गु नलुमे, आदि शब्द हैं जो सौदर्य जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं का दर्शन कराते हैं।

: ५८ :

अंचल छोड़ो ४० पु० की० भा० १.

[राग—केदारगौल् अटताल]

अंचल छोड़ो रे श्री हरि अंचल छोड़ोरे ।। प० ।।
हाथ जोड़ विनय करती हूं मेरा ।। अ० प० ।।

सास देखेंगी श्वास ना लेने देंगी
अचल छोड़ोरे श्री हरि अंचल छोड़ोरे ।। १ ।।

स्वसुर देखेगा तो प्राण लेगा मेरा
अंचल छोड़ोरे श्री हरि अंचल छोड़ोरे ।। २ ।।

पति देखेगा मेरी हत्या करेगा रे
पुडरीकाक्ष पुरंदर विठल तू अंचल छोड़ोरे ।। ३ ।।

: ५६ :

सुहागन १४६ ह० भ० मु०

[राग—कांबोधि झंपताल]

सुहागन रहूंगी मैं अति प्रेमसे
शतदश नामके स्वामी ही पति मान ।। प० ।।

गुरु-मध्वशास्त्र पठन ही है मांगल्य
परम वैराग्य धारण नथ है मेरी
तर तम-ज्ञान ही उत्तम सुमन है
परम-पुरुष ध्यान मंगल-मणि मान ।। १ ।।

हरि-कथा श्रवण है मेरी मोती माला
नित्य सत्कर्म ही मुख-कांति है
हरिदास पद रज अलंकार मेरे
गुरु-भक्तिका कुंकुम तिलक रखकर ।। २ ।।

विश्वमें पर-हितकी साड़ी पहन कर
देनेके दानकी कंचुकी कस कर
सतत मेरे स्वामी पुरंदर विठलमें
दृढ़-भक्तिके चेन्न कंकण धर कर ।। ३ ।।

: ६० :

हाथ छोड़ो १३७ पु० की० भा० ५

[राग—श्यामकल्याणि छापुताल]

पैर पकड़ती हूं हाथ छोड़ो
जीवो जीवन मेरी सुहागन बन कर ॥ प० ॥

कुच न पकड़ो रे मेरे रंग
वृक्षके फल मान पकड़े हैं री मैंने ॥ १ ॥

सास देखेगी तो कोप करेगी रे
आएगी तो यहां पगलाएगी वह ॥ २ ॥

पतिने देखा तो मार डालेगा
धैर्य कहां यहां आनेमें री उसे ॥ ३ ॥

ननंद देखेगी तो कुपित होगी रे
दोनों को साथ मैं रखूंगा री ॥ ४ ॥

मन ही लेने वाले सारे यहां मेरा
पुरंदर विठलको क्या जानती नहीं ॥ ५ ॥

: ६१ :

वह क्यों बुलाता है १७८ पु० की० भा० ३

[राग—सारंग आदिताल]

क्यों गोपाल बुलाता है, सखीरी
क्यों गोविंद बुलाता है मुझको ।। प० ।।

आंखें मार बुलाता है सखीरी
संकेतोंसे बुलाता है सखीरी
रूप लावण्य वर्णन कर अति मेरा
हार दिखा बुलाता है सखीरी ।। १ ।।

मूंगा दिखाकर मोती दिखाकर
एक शैया पर दिनके समय ही
काम नाटक रत देखकरके मुझे
क्या कहेंगे मेरे "वह" सखी री ।। २ ।।

बाहु-पाशमें कस कर मुझको
बहिरंगमें चुंबन किया मेरा
हृदय धड़कता मेरा सखीरी
पुरंदर विठल बुलाता है सखीरी ।। ३ ।।

: ६२ :

कामुक-कामिनि १७८ पु० की० भा० ३.

[राग — सौराष्ट्र त्रिपुटि]

कमल कोमल कर-तल ललित पाद पल्लव तू कौन है कृष्ण ।।
कामिनि भामिनि रूपका लावण्य देख ग्राई हुई भामा मैं हूं ।।१।।

नद-नंदन यदु-कुल-वंद्य है इदु-वदन तू कौन है रे कृष्ण
मंजुल-भाषिनी कमल-गंधिनी पद्मनाभ हे बाला मैं हूं ।।२।।

उदधि-शयन तू नवनीत-चोर तू जार-चोर तू कौन है कृष्ण
कामिनि-सुंदरी नीरजा-लोचना जार नही मुग्धा हूं रे कृष्ण ।।३।।

मंदर-धर हे सुगंध-सौंदर्य कंबु-कंधर तू कौन है कृष्ण
चंचल-लोचना कुटिल-कुंतला कोमलांगी मैं यौवना हूं रे ।।४।।

कमलानन हे कलुष-निवारण निष्काभरण तू कौन है कृष्ण
कामुक-कामिनि चंपक-गंधिनी पुरंदर विठल भामिनी हूं मैं ।।५।।

: ६३ :

वर काला ना कह ! १६१ पु० की० भा० ३.

[राग– शंकराभरण अटताल]

काला है ना कहो री मेरा हरि काला है ना कहो री ।।प०।।

हरिके मध्यमें काला हालाहाल भी काला
परम अश्व भी काला पारीजातक काला
वर-गज सब काले सुललित वर काला
वधु सुन मेरी जगमें गुलगुंजीका सिर काला ।।१।।

लेखन-लेखनी काली भारद्वाज पक्षी काला
उपजाऊ भूमि काली सुगन्ध कस्तूरी काली
राघवका तन काला सुललित वर काला
वधु सुन त्रै-लोक्यमें मेरा कन्हैया काला ।।२।।

शालिग्राम भी काला कालिंदीका जल काला
रुचिर कोयल काली निर्मल चित्त काला
सौभाग्य मणि काला सुललित वर काला
वधु सुन मेरी जगमें पुरंदर विठल काला ।।३।।

[**टिप्पणी**—वात्सल्य भाव में अपने लाल का विवाह भी सम्मिलित है। श्री पुरंदर दास अपने इस लाल का विवाह करना चाहते है। और "नखरे बाज वधू ने" वर को "काला" कह दिया।

यहां का प्रसंग और भी नाजुक है ! वर वधू पर फिदा है। वधू वर को "काला कलूटा" कह कर नखरे कर बैठी है ! तब आप ही सोचिए वर की मैया का क्या हाल होगा ?

द्वापर युग का अन्त होकर कलियुग का प्रारम्भ हुआ। धर्म डूबने लगा। बेचारे भृगु ऋषि इसका उपाय खोजने के लिए कैलास गये, वहां शंकर भगवान नग्नावस्था में पार्वती के साथ मनो-विनोद में व्यस्त थे। भृगु ऋषि ने उनको

शाप दिया, "कलियुग में तुम्हारी पूजा न होकर तुम्हारे लिंग की पूजा होगी।"

वहां से भृगु ऋषि ब्रह्म लोक में गए। वहां भी ब्रह्मदेव सरस्वती के साथ मनो-विनोद में मगन थे। भृगु ऋषि ने ब्रह्मदेव को शाप दिया। "कलियुग में तुम्हारी पूजा न होगी।"

भृगु ऋषि बैकुण्ठ में गए। बैकुण्ठ में भगवान विष्णु शेष-शैया पर लेटे थे, लक्ष्मी उनके पैर दबा रही थी। यह देख कर भृगु ऋषि को अत्यधिक क्रोध आया। उन्होंने भगवान की छाती पर लात मारी।

भगवान उठे। भृगु ऋषि की चरण सेवा करते हुए बोले, "आपके फूल से कोमल चरण। वज्र सम कठोर हृदय पर उनका आघात।"

भृगु ऋषि ने अपने आने का कारण कहा। भगवान विष्णु ने उनको यह कह कर आश्वस्त किया, "कलियुग में मैं पृथ्वी पर ही रहूंगा।"

किन्तु इससे लक्ष्मी को क्रोध आया। उसने विष्णु की अवहेलना की। विष्णु "शेशाचल" आंध्र राज्य, तिरूपति आकर रहे। लक्ष्मी भी वहां आ गई। भू देवी-पद्मावति बन कर आई। श्रीनिवास ने उनसे विवाह किया। उस समय पद्मावती ने कहा था, "श्रीनिवास काला है !!"

सम्भवतः श्री पुरंदरदास पद्मावती पट्टण, जो तिरूपति के निकट है, गए होंगे। पदमावति के दर्शन के समय उपरोक्त कथा का स्मरण हो आया और भजन गाया !!

: ६४ :

इसी समय आओ १५१ ह० भ० सु०

[राग—सौराष्ट्र आदिताल]

इसी समय रंग आओ रे
इसी समय कृष्ण आओ रे ।।प०।।
भाभी रत है लक्ष बत्तिमें
तब तक वह कभी नहीं उठेगी
सास गई है पुराण सुनने
तब तक वह कभी ना आएगी ।।१।।
ससुरका मुझमें अविश्वास है
पति मेरा अति उदासीन है
जेठ मेरा आदर नहीं करता
इसी समय तुम आओ रे।।२।।
माता पितासे आशा नही है
बालक पर भी ममता नहीं है
मंदर-धर श्री पुरदर विठल
तुम आओ तो सेवा करुंगी ।।३।।

: ६५ :

आने के बाद १५८ ह० भ० सु०

[राग—कल्याणि अटताल]

शब्द न कर रे कृष्ण तेरे पैर पकड़ती हूं रे ।।प०।।
सोए हुए लोग जग जाएंगे
आना तेरा जान क्या कहेंगे ।।अ० प०।।
चूड़ियां बोलेंगी, हाथ पकड़ मेरा व्वर्थ न खींचो रे
गल हार बोलेंगे, मेरा अंचल पकड़के ना खींचो रे कृष्ण ।।१।।
साड़ी छोड़ो रे कृष्णा, खुलनेमें बोलेंगी, चुंबन ध्वनिसे वे
उठ क्रोध करेंगे ईर्षासे जल कर अयोग्य कहेंगे ।।२।।
ग्राम्य बातें क्यों रे, यह गानेका समय क्या रे, गान लोल
हरि पुरंदर विठलका स्मरण मगन ही पूजा समय तू ।।३।।

: ६६ :

तेरा बवाल ५ पु० की० भा० ३.

[राग—गौलपंतुवरालि अटताल]

क्यों रे तेरा बवाल है यह
छोड़ो रे श्री हरि हे ॥प०॥
छोटी हूं जान मैं धोखा न दो मुझे
कंचुकीमें हाथ डालने ना दूंगी ॥१॥ छोड़ो
हंसो न यों ही हरि, बात जानती हूं सारी
ऐसे वैसे डरने वाली स्त्री मैं नहीं ॥२॥ छोड़ो
बस प्रेमालाप तेरे, तू
आता है रमनेको पुरंदर विठल ॥३॥ छोड़ो

: ६७ :

चरण नहीं छोड़ूंगा २३ पु० की० भा० १

[राग—मोहन झंपताल]

ना छोड़ू तव चरण गर्व क्यों करते हो
दो मुझे मन भीष्ट क्रोध क्यों करते हो ॥प०॥
जलमें घुसने पर भी गिरि उठाने पर भी
डाढ़ोंसे भूमि-धर बन घोर भय दिखाने पर भी ॥१॥
बटु होने पर भी मैं परशु धरने पर भी
पितृ वचनार्थ वनवास करने पर भी ॥२॥
कालिंदीमें कूद सर्प धरने पर भी
राज्य सुख त्यज दिगंबर विचरने पर भी ॥३॥
शीघ्र अश्व पे चढ़के भागने पर भी मैं
मोक्ष-दाता परंदर विठल चरण तव ॥४॥

: ६८ :

सिर नहीं फोड़ा इसलिए १३३ ह० भ० सु०

[सुलादि ध्रुवताल]

गोपी-देवीकी भांति ऊखलमें न बांधके
केवल दैन्यमें तड़पता हूं कृष्ण ॥
भृगु-मुनिकी भांति लात न मारके
केवल दैन्यमें कलपता हूं कृष्ण ॥
भीष्मकी भांति तव माथा न फोड़के
केवल दैन्यमें बिलखता हूं कृष्ण ॥
धर-धर रे हे देव प्रीत कर कहना सा
व्यर्थ मुझको पकड़ छलता तू कृष्ण ॥
ग्वालोंकी भैंसको लाठी ही गति जैसे
तुझको भी गति है वे पुरंदर विठल ॥

: ६९ :

तुझे ऐसा ही चाहिए ६५० पु० की० भा० ४

[उगाभोग]

कालीयकी भांति तुझे कस करके बांधना ।
बलिकी भांति तुझे द्वार-सेवक करना ।
पांडु-तनयकी भांति झाड़ू लगवा करके
सारथि बना करके अश्व-सेवा लेना ।
बालीकी भांति तुझे कटु वचन बोलना ।
यह छोड़ मैं तेरी पूजा अर्चा करके
धोकेमें आया सच पुरंदर विठल ॥

: ७० :

करुणाकर कैसे १३८. ह० भ०

[राग—धनासि आदिताल]

करुणा कर तू कहलाता कैसे
भरोसा नहीं मुझको ।।प०।।

भांति-भांतिसे मुझे नर जन्म देकर
फिर-फिर मन मेरा तोड़ करके ।।अ०प।।

करि ध्रुव बलि पांचालि अहल्या-
रक्षक इस भवमें तू कहके
सोच-जान कर परख देखनेसे
लगती हैं सारी दंत-कथा सी ।।१।।

करुणा कर तू हो तो इस समय
हाथ पकड़ तू मेरी रक्षा कर
सरसिजाक्ष यदि शासक हो तो
दुरित क्यों ये मुझे घेरते हैं रे ।।२।।

मरण-कालमें उस अजामिलकी रक्षा
गरुड़-वाहन बन की है तूने
यह सब पद तुझे चाहे तो मुझको
क्षणमें उबारो हे पुरंदर विठल ।।३।।

: ७१ :

पंचायत में चल १३५. हु० भ० सु०

[राग—नाटि कोरवंजी अटताल]

चल आओ, चल आओ, चार पंचोंमें मेरे स्वामी
मेरा तेरा व्याज्य निर्णय कर लें, प्रभु हे ।।प०।।

आदि कालसे मेरे अन्य अनेकोंने
पाद सेवा बहु काल करके तेरी
साधी हुई सम्पदा गति मेरी, जीवन का
आधार तू क्यों रे, देता नहीं है आओ ।।१।।

ऋण लौटानेमें करके बहाने शत
हरण करत काल कपटसे तू क्यों
सुजन-सम्मत हो ऐसी भांतिसे मैं
सिर तेरे चरणोंमें, बांधूंगा कसके आओ ।।२।।

सनकादि मुनियोंकी साक्षी देकर तूने
मन-मान्य हो ऐसा भरोसा दिलाया था
अनुमान करता क्या रक्षा कर रे अब
वनजाक्ष स्वामी श्री पुरंदर विठल आओ ।।३।।

: ७२ :

किस कुल का है ? १५४. पु० की० भ०

[राग—पूर्वि अटताल]

यह किस कुलका ना जाने हम ।।प०।।

सागर सुताका पति कहता है
पत्नी वनमें है कहता है
छाता लेकर मांगा भी कहता
विश्व-पति मैं भी कहता यह ।।१।।

राक्षसोंसे मेरा द्वेश है कहता
कहता है वानर सेना है मेरी
कहता है खगराज वाहन मेरा
शिवको अपना पोता मानता है यह ।।२।।

ज्ञानियोंमें अति श्रेष्ठ मैं कहता
युद्धमें अतिशय शूर मैं कहता
सुन्दर पुरंदर विठल मैं कहता
बेलूर चन्न केशव कहलाता ।।३।।

: ७२ :

सुलह नामा १४२. पु० की० भा० ३.

[राग--शकराभरण त्रिपुटिताल]

मुझे है सौगन्ध श्री हरि तुझे भी सौगन्ध ।।प०।।

मुझे तुझे हम दोनोंको हरि-भक्तोंकी सौगन्ध ।।अ०प०।।

तुझे छोड़ अन्य स्मरण किया तो मुझे है सौगन्ध, श्री हरि-
मुझे छोड़ तू कहीं गया तो तुझे है सौगन्ध ।।१।।

तन-मन-वचनमें वंचना किया तो मुझे है सौगन्ध, श्री हरि—
मनमें मेरे स्थिर न रहा तो तुझे है सौगन्ध ।।२।।

दुर्जन-सग किया तो मैंने मुझे है सौगन्ध, श्री हरि—
लौकिकसे मुक्ति ना दिया तो तुझे है सौगन्ध ।।३।।

सुजन संग ना किया तो मैंने मुझे है सौगन्ध, श्री हरि—
दुर्जन संगसे मुक्त न किया तो तुझे है सौगन्ध ।।४।।

प्रभु तव आश्रय ना किया तो मुझे है सौगन्ध, श्री हरि—
पुरंदर विठल तू प्रसन्न न हो तो तुझे है सौगन्ध ।।५।।

: ७३ :

हंसी आती है २२ पु० की० भा० १.

[राग—वंतुवरालि एकताल]

हंसी आती है मुझको हंसी आती है ।।प०।।

जगके जनका हगरण[1] देख ।।अ०प०।।

पर स्त्रियोंके प्रिय बन करके
परमानन्दसे उनसे मिलके
नदीमें जा कर डुबकी लगाके
मनके गिनने वालोंको देख ।।१।।

पति-सेवा त्यज कर पर-नरसे
प्रेमसे मिल कर क्रीड़ा करके
सतत स्नान व्रत रत स्त्रीको
देख मुझको हृदयसे भारी ।।२।।

काम-क्रोध-मद मनमें भर के
स्वयं सदा विष पुंज बन के
स्वामी पुरंदर विठलके दिव्य
नाम जप करतेहुओंको देख ।।३।।

१. विशिष्ट प्रकार का ग्रामीण तमाशा, इसमें सभी पात्र भांति-भांति के एक साथ आ कर एक साथ अपनी-अपनी बात करते हैं। जिनको जो सुनना हो देखना हो, वे वह देखें सुनें ! इसमें न कोई सिलसिला न व्यवस्था !!

: ७४

इसका फल क्या ? २४६ हु० भ० मु०

[राग--बेहाग आदिताल]

नीम गुड़में रखनेसे क्या फल है ?
नित्य सर्पको दूध देनेसे क्या फल है ॥प०॥

कुटिलता रत कुजनोंके मंत्रका
पठन करनेसे क्या फल है
मिथ्याचार रत मनुजोंके मनमें
विठलके स्मरनेसे क्या फल है ॥ १ ॥

कपटाचार वंचना-रत पुरुषोंके
जप तप करनेसे क्या फल है
कुपित बुद्धि न छोड़ कर सतत व्रत रत
उपवास करनेसे क्या फल है ॥ २ ॥

माता-पिताको दुःख देने वाला पुत्र
यात्रा करनेसे नित्य क्या फल है
घातक गुणका आचरण करके नित्य
नीति धर्म सुननेसे क्या फल है ॥३॥

पति-निंदामें रत सतत रहने वाली
सती व्रत करनेसे क्या फल है
अतिथियोंके संग प्रपंच रचकर, पर-
गति चाहनेसे क्या फल है ॥ ४ ॥

हीन कृत्य नित्य करते हुए गंगा
स्नान करनेसे क्या फल है
श्री निधि पुरंदर विठल स्मरण छोड़
मौन रखनेसे क्या फल है ॥ ५ ॥

: ७५ :

निंदक २६० हु० भ० सु०

[राग—नाद नामक्रिया आदिताल]

निंदक रहना है अपना ॥ प० ॥

सूकर हो तो टोला शुद्ध रहता है ॥ अ० प० ॥

दिन-नित्य करनेका पाप नामक मल
खाकर जाएंगे निंदक जन सारे
वंदनसे स्तुति करने वाले सब
किया हुआ पुण्य लेकर जाएंगे ॥ १ ॥

दुष्ट-जन इस जगतमें हो तो जब
शिष्ट-जनका यश अमर होगा तब
इष्ट प्रद कृष्ण मैं तुझसे सदा
उष्ट वर यही मांगूंगा रे नित्य ॥ २ ॥

दुर्जन सब इस विश्वमें सर्वत्र
कर जोड़ कर मांगूं फले सदाकाल
तरह-तरहसे तम ग्रस्त सुजनोंकी
पुरंदर विठल निंदा करें वे नित्य ॥ ३ ॥

: ७६ :

पेट के लिए ५५० पु० की० भा० ४

[राग—हुसेनि आदिताल]

सब जो करते हैं उदरार्थ स्वार्थार्थ ।।प०।।

परमात्म भजन है मोक्षार्थ मोक्षार्थ ।।अ० प०।।

पालकी ढोना उदरार्थ उदरार्थ, बड़े
मल्लोंसे खेलना उदरार्थ
चापलूसी करना उदरार्थ उदरार्थ, मेरे
प्रभुका ध्यान एक मोक्षार्थ ।। १ ।।

शासन करना उदरार्थ उदरार्थ, हाथी
घोड़े पर लड़ना उदरार्थ
छल कपट सारा उदरार्थ उदरार्थ, श्री
हरिको भजना एक मोक्षार्थ ।। २ ।।

खेती करना गिट्टी कूटना उदरार्थ उदरार्थ
व्याख्यान देना गाना रोना उदरार्थ, उदरार्थ
धैर्यसे मेरे पुरंदर विठलका, ध्यान
पूजन मात्र मोक्षार्थ ।। ३ ।।

: ७७ :

उदर वैराग्य ८६ हृ० भ० सु०

[राग—पूर्वि आदिताल]

उदर वैराग्य है भाई
पद्मनाभमें लेश भक्ति नहीं ॥ प० ॥

उदय-कालमें उठ थर थर कंपते
नदी-स्नानके अभिमानमें
मद-मत्सर-क्रोध हृदयमें भर कर
सगी-साथियोंको चकित करनेका ॥१॥

ठठेरोंके घरमें जा पच धातुकी
चमकीली भड़कीली मूर्ति लाके
चमकानेको बहु जोनि जलाकर
वंचनामय भजन-पूजनका यह ॥ २ ॥

करमें है जप-मणि मुखमें महामत्र
वसनका बुरका मुख पर डालके
पर-सतियोंके गुण-रूपमें अनुदिन
रत रह वैराग्यशाली कहनेका ॥ ३ ॥

दिखा कर भक्तिका अति आडंबर
अंतरंगमें काम-क्रोध संजोयके
नाटककी स्त्रीका सा अभिनय करके
रोटी रबड़ीके प्रबंधका यह ॥ ४ ॥

"मैं" औ' "मेरा" छोड़ ज्ञानियोंमें बैठ
सब कुछ हरिकी कृपा मान के
ध्यानसे मौनसे पुरंदर विठलका
स्मरण छोड़ करनेका कार्य सब ॥ ५ ॥

: ७८ :

भजन कैसा हो ५३० ह० भ० सु०

[राग—कल्याणि अटताल]

ना सुनेगा रे हरि ना सुनेगा रे ॥प०॥

प्रेम रहित साग्र[1] संगीत भजन ॥अ०प०॥

तंबोरा आदि सभी वाद्य हो
बांसुरीकी ध्वनि साथ हो
नारदादिका गान लोल हरि
ना मानेगा यह दांभिक चिल्लाना ॥१॥

भांति-भांतिके राग भाव स्वर
ज्ञान मनोधर्म जान कर सब
दानवारिके दिव्य नाम रहित
संगीत साहित्यका हीन तांडव यह ॥२॥

क्षण-क्षण आनंदाश्रु से पुलकित हो
पुन पुन श्री हरिके नामोच्चारसे
भक्त मिलनके भजन कीर्तनसे
तुष्ट होगा वह पुरंदर विठल ॥३॥

---

१. संगीत साधन

: ७६ :

कौन क्या जाने २५५. ह० भ० सु०

[राग—मुखारि झंपताल]

पापी-जन क्या जाने अन्योंका सुख-दुख
कोपी-जन क्या जाने शम-शील गुणको ॥प०॥

गदहा जाने क्या बोझकी कस्तूरिकी गंध
मृत्यु जानती है क्या काल समयादि
दासी जानती है क्या मान अभिमानका
दास क्या जाने स्वामीके दुःख कष्टोंको ॥१॥

जाने क्या जूं कभी सुगंध सुमनकी
श्वान क्या जाने रागोंके भेद
मीन जानता है क्या पानीके स्वादको
हीन जन क्या जाने सद्गुण औ' दुर्गुणको ॥२॥

केला क्या जाने पुन फलनेका फलितांश
वेश्या जाने क्या कभी विट-जनका दारिद्रय
बहरा जाने क्या कभी एकांतकी बात
गूंगा कह सकता क्या स्वप्न सुखको ॥३॥

काक जाने क्या कोयलके पंचम स्वरको
उलूक जाने क्या दिवा गमन सुखको
जोगी क्या जाने संसार-तापत्रयको
रोगी जाने क्या मिष्ठान्नका सुख-स्वाद ॥४॥

भीत क्या जाने रणके शौर्य धैर्यादि
मर्कट क्या जाने माणिक्य मणिका मूल्य
इच्छित वरद श्री पुरंदर विठलके बिन
देंगी क्या ग्राम्य दैवत मोक्षको ॥५॥

: ८० :

मूर्ख लोग २५३० ह० भ० सु०

[राग—केदारगौल झंपताल]

मूर्ख हुए अब लोग जगतमें सारे
एक देवको छोड़ लाखोंको पूजकर ।।प०।।

एकांतमें सतीको रखनेवाला मूर्ख
औरोंको अपना धन देनेवाला मूर्ख
स्वजनोंको ऋण देनेवाला भी अति मूर्ख
जन-द्रोही बन करके जीनेवाला मूर्ख ।।१।।

संततिको बेचकर खाने वाला मूर्ख
श्वशुर-गृहमें सतत रहने वाला मूर्ख
पर गृहमें गरीबीमें जाने वाला मूर्ख
दृढ़-भक्ति-हीन नर अति मूर्ख है रे ।।२।।

मृत शावककी गोको दुहने वाला मूर्ख
आधार बिन धनको देने वाला मूर्ख
आठ दस बातोंमें उलझने वाला मूर्ख
जनम-दात्री मांको कोसने वाला मूर्ख ।।३।।

नाम स्मरणका त्याग करने वाला मूर्ख
गुरु-जनको नमन न करने वाला मूर्ख
नियमसे हरि-कथा न सुनने वाला मूर्ख
उपकार कर्ताको भूलने वाला मूर्ख ।।४।।

तामसका स्वीकार करने वाला मूर्ख
वचन-बद्धका घात करने वाला मूर्ख
पुंडरीकाक्ष श्री पुरंदर विठलका
विस्मरण करने वाला अति मूर्ख है ।।४।।

: ८१ :

दुर्जन ११६ पु० की० भा० १.

[राग—मोहन अटताल]

कीकर पेड़ से है दुर्जन सारे
कीकर पेड़ से हैं ॥प०॥
मूलाग्र तक सारे कांटों ही से भरे ॥अ०प०॥

घाममे तपके आएका साया नही
भूखसे आएको खानेको फल नाही
सुमन-सौरभ नाही आमरा कुछ नाही
रसमे रुचि जिसकी विषसे भी कम नाही ॥१॥

ग्राममें सूकरको मिष्टान्न दिया तो भी
दुर्गंध मल छोड़ेगा क्या वह कभी
घोर पापीको तत्व-ज्ञान सुनाया तो
क्रूर कर्म छोड़ सुजन होगा कभी ॥२॥

अपनेसे उपकार किसीको तनिक नहीं
आत्म-स्तुतिमें कहीं आदि अन्त नहीं
भूमि भार बन अन्न संहार ही
कार्य इनका श्री पुरंदर विठल ॥३॥

: ८२ :

मन को धोनां जानो १८० पु० की० भा० १.

[राग – काफी एकताल]

मलको धोना जानते हैं मनको धोना जाने क्या ।।प०।।
बहुत तीर्थमें नहाके तनको धोके फल ही क्या ।।अ०प०।।
भोग विषय फलमें मत्त राग लोभमें प्रमत्त
होके भ्रममें सतत ग्रस्त भाग्यवंत बनते क्या
योगी जैसे लोक-प्रिय होने तीर्थ स्थलमें जाके
काग जैसे डुबकी मारे माघ स्नान फल ही क्या ।।१।।
दूसरोंका बुरा चेत गुरु जनोंकी निंदा करके
परम सौख्य मान पर स्त्रीकी चाह मनमें धरके
मौनि जैसे पृथ्वी पर दंभ भारी करके नित्य
नदीके तीर जाके बक ध्यान करके फल ही क्या ।।२।।

धनकी आशा धरके मनमें हरिके दास बनके देश
देश भटक काशी-यात्रा करनेसे भी फल ही क्या
आशा पाश तोड़े बिना मनमें हीन विषय भरके
वेश धारी बनके बदरी यात्रा करके फल ही क्या ।।३।।
माता-पिता घरमें नित्य दुःख-त्रस्त होने पर भी
करके उनकी अवहेलना वेश्या वाटिकामें जाके
पितृ-मृत्यु बाद सहस्र ब्राह्मणोंको अन्न-वस्त्र
देके श्राद्ध-कर्म करके पितृ-तृप्ति होती क्या ।।४।।

कुछ भी पढ़े तो ही क्या औं' कुछ भी सुने तो ही क्या
ध्यान-मग्न होके हरिका स्मरण नित्य किए बिना
मौन-नेम निष्ठासे क्या हीन-चित्त होने पर
श्री निवास पुरंदर विठल तुष्ट होगा क्या ।।५।।

: ८३ :

स्नान २५. पु० की० भा० १.

[राग— मध्यमावति झंपताल]

तनपे पानी डाल क्या फल है
मनमें दृढ़-भक्ति हीन मनुज के ।।प०।।

दान-धर्म करना ही स्नान,
हीन पाप छोड़ना भी एक स्नान
ज्ञानसे तत्व जानना ही स्नान है
ध्यानसे माधवको देखना ही स्नान ।।१।।

गुरु-पद-दर्शन भी स्नान है भइया
वृद्ध-जन दर्शन ही स्नान है
आदरसे अन्न देना ही महा स्नान है
हरि-चरणमें भक्ति विश्वास स्नान ।।२।।

दुष्ट-संग त्यजना ही एक स्नान
सज्जन संग भी स्नान है भाई
सृष्टिमें पुरंदर विठल चरण-स्मरण
लीन रहना नित्य स्नान महा ।।३।।

: ८४ :

गोविंद कहो १६२, पु० की० भा० १.

[राग --पंतुवरालि एकताल]

गोविंद कहो रे हरि हरि गोविंद कहो रे ।।प०।।
भूल न जाओ रे हरि हरि गोविंद कहो रे ।।अ०प०।।

भरे हुए शहरके नव द्वार हैं
रहते हैं उसमें राजा पांच
दंभसे रक्षक बने हुए जीवमें
विश्वास कर नष्ट न हो तू मनुजा ।।१।।

स्थिरता रहित तन अस्थि पंजर एक
उस पर सुन्दर चर्मका बुरका
अन्दर मल मूत्र कृमि और कीटक
केवल चर्म पे ना रीझ मनुजा ।।२।।

ब्रह्मादि देवोंसे वंदित श्री हरि
सर्वोत्तम मान कर तू मनुजा
पुरंदर विठलके चरण कमल भज
दुरित भयसे मुक्त हो रे तू मनुजा ।।३।।

: ८५ :

ये व्यर्थ हैं ५० पु० की० भा० १.

[राग—पूर्वि अटताल]

हरि सुमिरन बिना नर जन्म बिरथा
हरि स्तवन बिना वाणी है व्यर्थ ॥प०॥

वेद पठन हीन विप्र वृथा
युद्ध-विद्याहीन सैनिक व्यर्थ
क्रोध तजे बिन संन्यासी बिरथा ।
बिन आदर अमृतान्न व्यर्थ ॥१॥

सत्य-शौच रहित सदाचार व्यर्थ
नित्य-नेम रहित जप-तप व्यर्थ
सत्य-वचन बिना प्रवचन व्यर्थ
भक्ति-भाव बिना हरि-पूजा व्यर्थ ॥२॥

अकालमें मृत संतान है व्यर्थ
ज्ञान-दान बिना गुरु है व्यर्थ
वारिजनाभ श्री पुरंदर विठल
दर्शन बिन ये नयन हैं व्यर्थ ॥३॥

: ८६ :

राम और यम   १६३ पु० कीं० भा० २

[राग—मुखारि झपताल]

यम कहीं देखा नहीं ना कहो रे ॥प०॥
यम रामचन्द्र संदेह नहीं रे ॥अ०प०॥

शरण विभीषणका राम जो था
अशरण रावणका यम बना रे ॥१॥

शरण अर्जुनका जो सेवक था
अशरण कौरवका नाशी बना ॥२॥

शरण उग्रसेनका मित्र जो था
अशरण कंसका शत्रु बना रे ॥३॥

शरण प्रह्लादका हरि जो था
शरण कश्यपुका अरि बना रे ॥४॥

शरण रक्षक स्वामी हमारा है
भव तारण पुरंदर विठल ॥५॥

: ८७ :

मानव जन्म १८ पु० की० भा० १

[राग — रेगुप्ति अटताल]

मानव जन्म बड़ा है, इसकी
हानी ना करो तुम पागल लोगो ।।प०।।

आंखें कान हाथ पैर जिव्हा जब है
माटी खाके पगले क्यों बनते हो
माटी नारीके लिए हरिका नामामृत
छोड़के उपवास करते क्यों मूर्खो ।।१।।

यमके दूत जब पकड़ खींच लेंगे
रुको रुको कहनेसे रुक जाएंगे क्या
हमला होनेसे पहले धर्म प्राप्त करलो
भवके बवंडरमें फंसो ना रे प्राणी ।।२।।

क्या कारण यदु-पतिको भूले तुम
धन धान्य पुत्र आएगे क्या समयमें
अब तो एकाभावसे भजलो प्यारे
वरद श्री पुरदर विठल स्वामीको ।।३।।

: ८८ :

जीवन कुशलता १२ पु० की० भा० .

[राग—धनश्री आदिताल]

तैरना चाहिए, तैरके जीतना चाहिए ।।प०।।
बिगड़े संसारमें आशा न रहे ऐसे ।।अ० प०।।

तामरस जलसा प्रेम रख इस भवमें
स्वामी राम कह के गा के कामित पा के ।।१।।

काजू फलमें बीज घुसने जैसे भवमें
आशा न कर अति विष्णु भक्तोंको नित ।।२।।

मांस-आशासे मीन जैसा फंसता वैसा
फंस न, भज नित्य पुरंदर विठलको ।।३।।

: ८९ :

कौन कुलका हो तो क्या १३९ पु० की० भा० ३.

[राग—रेगुप्ति अटताल]

कौन कुलका हो तो क्या है कौन हो तो क्या है भइया ।।प०।।
आत्म भाव जानने पर 'कुलके बंधनसे छुटा" ।।अ० प०।।

ईश्वर टेढ़ा हो तो उसका रस भी टेढ़ा होता क्या रे
विषय आशा छोड़ सतत हरिकी भक्ति कर रे भइया ।।१।।

भिन्न वर्णकी होती गाय पयका वर्ण भिन्न है क्या
हीन कर्म छोड़ ज्ञानवान जनका कुल हो क्या है।।२।।

कुलकी चर्चा छोड़ भइया ज्ञानी जनका कुल नही है
पुरंदर विठल चरण शरण दास मुक्त है रे ।।३।।

: ९० :

धर्म विजय २१० ह० भ० सु०

[राग—कांबोधि झंपताल]

धर्म ही विजय है यह दिव्य मंत्र
मर्म यह जानकर आचरण कर उठ ।।प०।।

विष देने वालोंको अमृत देते रहना
द्वेष लेकर भी तुम प्रेम देना
रोषसे शाप दें तो उनको तोष दो
ताप दें तो उनको मधुर आलाप दो ।।१।।

रुष्ट दुष्टके सदा गुण वर्णन हो करना
वधिक शत्रुको मित्रताका ही मधु देना
घोर निंदकका नित चरण वंदन करना
बंधनमें बद्धको मुक्त नित करना ।।२।।

पापसे लिप्तको पुण्यका अवसर दो
अनुताप-रतको निज हृदयका दान दो
जानकर भजन करो पुरंदर विठलका
जानकर भी रहो अज्ञ जनसा ।।३।।

: ६१ :

यही भाग्य है २०७ हु० भ० सू०

[राग—कांबोधि झंपताल]

यह भाग्य यह भाग्य यह भाग्य है रे।
पद्नाभके पाद भजन सुख है रे ॥प०॥

पत्थर सा बन रहना कठिन भव सागरमें
धनुरूप रहना है ज्ञानियोंमें
हौले हौले माधवसे चित्तको जोड़ना
मधु-सा रहना मधुर प्रिय-जनोंमें ॥१॥

बुद्धिमें तन मनको साध कर नित रहना
प्रेमसे रहना है मुनि योगियोंमें
मध्व मत सागरमें मीन सा बन रहना
शुद्ध बन रहना है करण त्रयमें ॥२॥

विषय भोग तृण हेतु ज्वाला सा बन रहना
दिन-रात श्री हरिका स्मरण करना
वसुधेश पुरंदर विठल रायके पदके
दासोंका सतत तुम संग करना ॥३॥

: ६२ :

ज्ञान तीर्थ ६६. पु० की० भा० १

[राग—पूर्वि अटताल]

स्नान करो ज्ञान तीर्थमें सारे
मैं औ' तू इस अहंकारको छोड़ कर ।।प०।।

माता पिताकी सेवा एक स्नान
बद्धको मुक्त करना एक स्नान
सत्पथ जानना भी एक स्नान है
इंदिरेशका ध्यान गंगा स्नान है रे ।।१।।

पर-नारी न चाहना एक स्नान
पर-निंदा न करना एक स्नान
पर-वित्त न चाहना एक स्नान
पर-तत्व जानना महा-स्नान है रे ।।२।।

अपनेको जानना दिव्य स्नान है
अन्याय न करना एक स्नान
अन्यथा न बोलना एक स्नान
सतत श्री हरि स्मरण पुण्य स्नान है रे ।।३।।

वृद्धोंकी सेवा भी है एक स्नान
गुरु सेवा भी नित्य एक स्नान
सतीकी पति सेवा एक स्नान
पार्थ-सारथि-स्मरण दिव्य स्नान है रे ।।४।।

सत्शास्त्र पठन भी है एक स्नान रे
भेदाभेद ज्ञान है एक स्नान
सज्जन संग महा नित्य स्नान है
पुरंदर विठल भजन सागर-स्नान ।।५।।

: ९३ :

मध्व सिद्धांत २२१. ह० भ० सु०

[राग—नादनामक्रिया आदिताल]

मध्व मतकी सिद्धान्त पद्धति ना छोड़ो ना छोड़ो ।।प०।।

हरि सर्वोत्तम है इस ज्ञानको
तारतम्यसे कहनेके मार्गको ।।१।। ना छोड़ो···

घोर यमका भय दूर भगा कर
मुरारिके चरण दिखानेके मार्गको ।।२।। ना छोड़ो···

भारतीश मुख्य प्राणांतर्गत
नीरजाक्ष मेरे पुरंदर विठलको ।।३।। ना छोड़ो···

: ९४ :

हरिभाव ५१ पु० की० भा० ५

[उगाभोग]

नित्य पति भाव है श्री लक्ष्मी देवीको
नित्य सुत भाव है ब्रह्म-वायु देवको
नित्य पौत्र भाव है शेष गरुड़ रुद्रको
नित्य भ्रातृ भाव इंद्र काम आत्म जीवमें
ऐसा कहा पुरंदर विठल ।।

टिप्पणी—९३, ९४, ९५, ९६ ये चार भजन मध्व संप्रदायके दार्शनिक प्रमेय पर हैं ।

: ९५ :

पंच भेद और तारतम्य ज्ञान २२५. ह० भ० सु०

[राग—सौराष्ट्र त्रिपुटिताल]

सत्य जगके ये पंच भेद हैं नित्य श्री गोविंदके
कृत्य जानके तारतम्यके हरि सर्वोत्तम जान रे ।।प०।।

जीव ईशको भेद सर्वत्र जीव जीवमें भेद है
जीव जड़में जड़ औ' जड़में भेद जड़ परमात्ममें ।।१।।

मानुषोत्तम अधिक विश्वमें मनुज देव गंधर्व है
ज्ञानी पित्र जान कर्मज दानवारि तत्त्वात्म हैं ।।२।।

गणप मित्र और सप्त ऋषि जन अग्नि नारद वरुण जो
इनजको सम चन्द्र सूर्य हैं मनु सुताधिक प्रवाह हैं ।।३।।

दक्ष-सम अनिरुद्ध शचि रति स्वयंभु वे आर्य हैं
मुख्य प्राणसे अधिक कम है किंचित् ही इन्द्र वह है ।।४।।

इन्द्रसे अधिक महारुद्र है उनके सम गरुड़ शेष है
केवल अधिक गरुड़ शेषसे देवी भारती सरस्वती ।।५।।

वायु सम इस विश्वमें नहीं वायु देव ही ब्रह्म है
वायु ब्रह्मसे कोटि उच्च है शक्ति गुणमई श्री रमा ।।६।।

अनंत बलसे लक्ष्मीसे वह अधिक पुरंदर विठल है
घन सम इनके नहीं हनुम-हृत्-पद्म-वासिको ।।७।।

: ६६ :

हरि सर्वोत्तमत्व ३० पु० की० भा० २

[राग—सावेरी झंपताल]

हरि ही सर्वोत्तम है हरि ही पर दैवत है
हरि सर्व विश्व-मय जगत है ॥प०॥

हरि विन अन्य कोई देव नहीं मैं ऐसा
उरग फन पकड़ के कहता हूं भाई ॥अ० प०॥

जग जन्मदाता है ब्रह्म उसका पुत्र
जग संहारक रुद्र पौत्र है उसका
जगकी पावन भगीरथी उसकी पुत्री है
जग जननी श्री लक्ष्मी उसकी सती है ॥१॥

विश्वतो मुख वह है विश्व चक्षु ही वह है
विश्वतो बाहु वह विश्व पाद ही वह है
विश्व उदर ही वह है विश्व व्यापक वह है
विश्व नाटक सूत्रधारि हरि है ॥२॥

आगम निगम पुराण सारे उनके
योगी मुनि सभी गाते उनके गीत
नाग शयन योगी भूषण वंदित है
भागवत जन प्रिय पुरंदर विठल ॥३॥

: ६७ :

स्वप्न में दर्शन ६८ पु० की० भा० २

[राग- शंकराभरण अटताल]

देखा सपनेमें गोविन्दको ॥प०॥

देखा सपनेमें मैंने कनक रत्न मणिको
नंद नदन मुकुंदके चरणको ॥अ० प०॥

चरणमें नूपुर झुन-झुन करके ।
आके कालिंगके फनपे चढ़के
धिं धिमि धिमि किट ताल गतिसे अति ।
मोद नृत्य रत मुकुंद चरणको ॥१॥

कटिमें पीताम्बर गलेमें मोति माला ।
कौस्तुभ मणि औ' तुलसी माल
सिरमें मुकुट दिव्य करमें है कंकण ।
धृत द्वादश नाम निगम गोचरको ॥२॥

वर चतुर्भुज शंख चक्र धर हरि ।
गदापद्म दिव्य आयुधसे
दुष्ट-दमन शिष्ट-पालन कर हरि ।
नित्य शोभा मय करुणा मूर्तिको ॥३॥

मंगल वर तुंग भद्र शोभित, श्री
लक्ष्मी रमण औ' भू-रमणको
लक्ष करके देख मिटा रे भव भय ।
श्रृंगार मूर्ति श्री पुरंदर विठलको ॥४॥

: ९८ :

धन्यता १७८ हृ० भ० सु०

[राग—रेगुप्ति अटताल]

धन्य हुआ मैं इस जगतमें ।।प०।।
पन्नग शयनको देख ।।अ० प०।।

उन्नत महिम पावन चरित सुर सन्नुत श्री चरण
गरुड़ वाहन पुरुष रत्न चन्निग श्री रंग देख ।।१।।

देवदेवोत्तमकी रक्षा करने वाले श्री रंगको
कावेरी तीरके उत्तम क्षेत्रके पन्नग शयनको देख ।।२।।

भानु-कोटि प्रभा स्वानंद पूर्ण दीन-रक्षक
श्रीनिधि पुरंदर विठल श्री रंगकी महिमा देख ।।३।।

: ९९ :

दर्शन मुक्ति ७ पृ० की० भा० ३

[राग—तोड़ि रूपकताल]

देख तुझको धन्य हुआ रे, हे श्रीनिवासा
देख तुझको धन्य हुआ रे ।।प०।।

पक्षी-वाहन लक्ष्मी-रमण
लक्ष रखके देखो पांडव
पक्ष सर्व दैत्य नाशक
रक्षा करो कमलाक्ष ।।१।।

देश-देश भटक कर मैं
आशा बद्ध हुआ स्वामी
दास बना लो मुझे जग-
दीश श्रीश श्री निवासा ।।२।।

काम-जनक सुनो मेरी
अंतरंगकी आशा
अंतर रहित मुक्ति दो श्री
कांत पुरंदर विठल ।।३।।

: १०० :

'परमात्म दर्शन ह० पु० की० भा० १

[राग—पंतुवरालि अटताल]

देखा मैंने गोविंदको
पुंडरीकाक्ष पांडव पक्ष कृष्णको ।।प०।।

केशव नारायण श्री कृष्णको
वासुदेव अच्युतानंतको
सहस्र नामके श्री हृषीकेशको
शेष-शयन वसुदेव-तनयको ।।१।।

माधव मधुसूदन त्रिविक्रम
यादव कुलके भूषणको
वेदांत वेद्यको इंदिरा-रमणको
आदि मूरति प्रह्लाद वरदको ।।२।।

पुरुषोत्तम नरहरि श्री कृष्णको
शरणागतके रक्षकको
करुणाकर श्री पुरंदर विठला'
'परम पुरुष परमात्म रूपको ।।३।।

: १०१ :

निर्भयता १८५ ह० भ० सु०

[राग—आनंदभैरवी आदिताल]

राजि हुआ तो क्या कोई नाराज हुआ तो क्या
क्षीर सागर शयन लीन हुए हरि दासोंसे ॥प०॥

शासन रत शासकोंने हमको दूर किया तो क्या
घोर वनके व्याघ्र मृगने हमको आ घेरा क्या
यमके दूत रोगकी सेना हमको जकड़े तो क्या
वारिजनाभ वासुदेवमें मगन हरिदासोंसे ॥१॥

जनम दिए माता-पिताने हमारा अहित किया तो क्या
सती सुतादि आत्म जनने हमसे क्रोध किया तो क्या
संगी साथी इष्ट मित्र हमारे शत्रु बने तो क्या
सागर शयन करुणा निधिके नाममें लीन हरिदासोंसे ॥२॥

वन बिहारी सर्प-राज आके जकड़ लिये तो क्या
मधु मक्खी कीटकोंने आके त्वचा काटी तो क्या
भानु नंदन बुध मंगलकी वक्र दृष्टि हुई तो क्या
पुरंदर विठल ध्यान मगन हरिदासोंसे ॥३॥

: १०२ :

अनासक्त जीवन १६१ ह० भ० सु०

[राग—पूर्वि आदिताल]

रहना चाहिए न रहने जैसा
मंसारमें जनकादि राज ऋषियोंसे ।।प०।।

मिथिल नगर भस्म हुआ यह सुन कर
मिथिलेश बोले "मम किंचन्नदह्यति" ऐसे ।।१।।

दधीचि ऋषीने दी अपनी अस्थि सुरको
मधु बैरी वैकुंठ पुर देने की भांति ।।२।।

पुरंदर विठलके दासोंके साथ तो
पुत्र मित्र बंध बांधवोंकी भांति ।।३।।

: १०३ :

मुक्ति संदेश १६० ह० भ० सु०

[राग—मुखारि अटताल]

कैसे रहना है संसारमें ?
ऐसा ही लिखा है प्राचीनमें[1] ॥प०॥

लीलासे बालोंने घर बांधा रे
खेल छोड़ जैसे उठ भागे रे ॥१॥

मेला लगा बहु विध अति सुंदर
पथिक चला जैसे अपने पथ पर ॥२॥

पक्षी आया अंगनमें जैसे
और उड़ा उस अंगनमेंसे ॥३॥

पथिक आया जैसे रैन बसेरे
भोर हुई उठा और चला रे ॥४॥

संसारमें है "अहम्" "मम" का पाश
"इदं न मम" है मुक्ति संदेश ॥५॥

पुरंदर विठल कृपा करो रे
"अहं मम" से मुक्त करो रे ॥६॥

---

१. प्राचीन ग्रन्थों में

: १०४ :

अमौलि वस्तु १६० पु० की० भा० ४

[राग—उदयराग छापुताल]

अच्युतानंत गोविंद नामकी वस्तु पाई मैंने ।।प०।।

अनंत पुण्यसे यह पर[1] वस्तु पाई मैंने ।।अ०प०।।

व्यय न होती है यह न छिपा रख सकते
समयपे उठ गानेकी वस्तु पाई मैंने ।।१।।

क्षीर सागरका अमृत लाई कामधेनु पाई मैंने
नील वर्णकी यह दिव्य मणि पाई मैंने ।।२।।

सुर नर मुनियोंको देनेके रत्नका मूल्य यह
वरद पुरंदर विठल नामकी दिव्य मणि पाई मैंने ।।३।।

---

१. श्रेष्ठ

: १०५ :

सभी हरि पूजा ७१ पृ० का० भा० १.

[राग—शंकराभरण झंपताल]

मकल सर्वस्व हरिपूजा मानो
रुक्मिणिके पति बिना अन्य कछु नहीं मान ।।प०।।

वचन सारे नारायण कीर्तना मान
चलना मानो श्री हरि-यात्रा है
देना दिलाना सब कृष्ण अर्पण मान
प्राप्त अन्न ही विष्णु-प्रसाद मानकर ।।१।।

नव वस्त्र परिधान हरिका दिया दान
सुमन सुगंध सब कृष्णार्पण
अभरण सर्वस्व नंद नंदनके हैं
नव परिणीना-संग गोपालकृष्णका मान ।।२।।

खेल क्रीड़ा सब है अंतर्यामीको मान
मिलन दर्शन सब है हरि दर्शन
उत्तम वस्तु सब है पुरुषोत्तमका मान
संसार ताप नाटक सूत्रधारिके हैं ।।३।।

निद्रा जागरण सब क्षीराब्धि वासका
निधि विधि सर्वस्व गजराज वरदको
रौद्र दारिद्र्य सब राघव चरणमें है ही
श्री मुद्रा धारण है हरिदासको ।।४।।

अणुरेणु तृणकाष्ट परिपूर्ण है रे वह
अनंतानंत महिमा उसकी है
दुष्ट मर्दन शिष्ट पालनके व्रतधारी
फणिशायी पुरंदर विठल परदैव है ।।५।।

: १०६ :

धन्यता १८० ह० भ० सु०

[राग - आरभि अटताल]

हरिदासोंका संग मिला मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
वर गुरु उपदेश मिला मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
अहंकार ममकार मिटा मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
राम नाम वाणीमें स्थिर हुआ मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
नानात्त्वका भ्रम मिटा मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
हरिका ध्यान चितमें रहा मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
माता पिता मुकुंद बना मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
संदेहातीत परमात्म ज्ञान हुआ मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
शाश्वत सुखानंद मिला मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
मेरा वंश पावन हुआ मुझे अब और क्या पाना रहा ॥
पुरंदर विठल मिला मुझे अब और क्या पाना रहा ॥

: १०७ :

[उगाभोग] १४० पु० की०, भा० प०

आजका दिन शुभ दिन
आजका वार शुभवार
आजका तारा शुभ तारा
आजका करण शुभ करण
आजका योग शुभ योग
आजका लग्न शुभ लग्न
आज पुरंदर विठलके
दर्शनका शुभ दिन ॥

: १०८ :

मंगल आरती २६४ ह० भ० सु०

[राग—भैरवी छापुताल]

जय मंगलम् नित्य शुभ मंगलम् ।। प० ।।

सच्चिदानंद सर्व गुणपूर्णको
अत्यंत सुज्ञान अब्जाक्षको
प्रसन्न वदन श्री लक्ष्मी रमणको
कल्याण मय सदा अखिलेशको ।।१।।

व्यासावतारको वेद उद्धारको
शत दश नामके सर्वेशको
वसति वैकुंठ श्री निलय धामको
शेष गिरिवास श्री वेंकटेशको ।।२।।

शाप ग्रस्त भक्तके शाप मुक्तको
तुंबुर नारदादि मुनि वंद्यको
अंबुजनाभ श्री कमलासन पित
कंबु कंधर श्री पुरंदर विठलको ।।३।।

परिशिष्ट

उगाभोग

मनो वचनमें । काय कर्ममें
तू, तू तू ही है । पुरंदर विठल ।।१।।

× × ×

सत्यज काम सत्य महिम
सत्य काम सत्य पूर्ण
सत्य भूषण सत्य पूत
नित्य पुरंदर विठल ।।२।।

× × ×

तुझे ही गाऊंगा तुझे ही पूजूंगा
तुझे ही स्मरुंगा तुझसे ही मांगूगा
तेरे चरणका आसरा चाहूंगा
तुझ-सा रक्षक अन्य कौन है रे
श्री पुरंदर विठल ।।३।।

× × ×

श्री चतुर्मुख, सुर मनु मुनि जन
मनुजोत्तम, मनुज-जन तारतम्य
युत है श्री पुरंदर विठलके शरण सदा ।।४।।

× × ×

गाऊंगा तो स्वामीका यश गान गाऊंगा
मागूंगा तो प्रभुका प्रेम-भोग मागूंगा
रोऊंगा तो स्वामीको पेट दिखा कर रोऊंगा
पुरंदर विठलके ही चरण पकड़कर जीऊंगा ।।५।।

× × ×

जीवन हो तो अन्नकी कमी नहीं
जीवको कभी तनकी कमी नहीं
जन्म-मरण सहज है इस संसारमें
समय पर हरि-स्मरण कर
उनकी कल्याण कथा सुन
बिन इसके सब व्यर्थ है रे
पुरंदर विठल ॥६॥

× × ×

गुड़की क्यारीमें नीमका बीज लगाकर
मधुकी सींचाई करनेसे उसकी
कड़ुवाहट जाएगी क्या पुरदर विठल ॥७॥

× × ×

क्या देखा तो क्या क्या सुना तो क्या
मनका तामस मिटने तक बांसरीकी
ध्वनिमें सांपका डुलने-सा है पुरंदर विठल ॥८॥

× × ×

मुझे तुझमें भक्ति हो या न हो
सज्जन कहते हैं "हरिदास यह"
हरिदासको यमदूतने घसीटा
इस अपकीर्तिसे बचनेके हेतु
मेरी रक्षा करो प्रभु पुरंदर विठल ॥९॥

× × ×

किसीका दास बनकर जीनेसे
बंधन रहित हो स्वेच्छासे
प्राप्त दाना भी पर्याप्त है रे मुझे
अधिक ना चाहूं प्राप्तान्न संतुष्ट हूं
मैं, रक्षा करो तुम पुरंदर विठल ॥१०॥

× × ×

तंबोरा धरा कि भव सागर तरा
ताल धरा कि नर सुरोंमें जा मिला
घुंघुरु बांधे कि पगमें मिटी दुर्जनता
रागालापसे देखी उसने हरि-मूर्ति
पुरंदर विठल दर्शन ही है मोक्ष ॥११॥

× × ×

एक समय गजाश्व पर चढ़ाते हो तुम
एक समय पदचारी बना कर घुमाते हो
एक समय मृदु-मधुर मिष्टान्न खिलाते हो
एक समय निराहार उपवास कराते हो
तेरी महिमा यह तू ही जाने मेरे पुरंदर विठल ॥१२॥

× × ×

चंचल मनसे तप करना अशक्य
धन अज्ञानसे न लिप्त होता कर्म बंधन
बिना धन-शुद्धिके दिया दान ही व्यर्थ
इससे पुरंदर विठलने कहा इस युगमें
मम नाम स्मरण ही सकल साधन है ॥१३॥

× × ×

बलिके घर वामन आनेकी भांति,
भगीरथके घर गंगा आनेकी भांति
मुचकुन्दके घर मुकुंद आनेकी भांति
गोपियोंके घर गोविन्द आनेकी भांति
विभीषणके घर राम आनेकी भांति
तव नाम मम जिह्वा पर आ स्थिर हो
ऐसी ही कृपा कर हे पुरंदर विठल ॥१४॥

× × ×

जगवेष्ठित है तव मायासे
तू वेष्ठित है मेरे मनसे

तू जानता है इस त्रिभुवनको
मैं जानता हूं केवल तुझको
त्रिभुवन है तुझमें औ' तू है मुझमें
जैसा बसता है हाथी छोटे दर्पणमें
वैसा पुरदर विठल तू बसा है मुझमें ।।१५।।

× × ×

नारीसे होता है मोहित नर, पर
नरसे होता है क्या मोहित नर,
हरि परम-पुरुष, उससे सारे नर
होते हैं मोहित ब्रह्मादि परम-श्रेष्ठ
पुरंदर विठल मोहन रूप है इसमे ।।१६।।

× × ×

सनकादिके हसकी भांति कमलमें
लीला-रत परम मूर्तिको मनुजोत्तमके
अन्तरंगाकाशमें देखा विद्युल्लता-सी
शत कोटि तेजसे चमकते पुरदर विठल ।।१७।।

× × ×

मांगनेके दुःखसे मृत्यु भला
मांगने वालेका रहता है क्या मान प्रभु !
दानी बलिसे दान पाकर राज्य नापने
बड़ा बननेकी चातुरी तेरी ही है प्रभु
दाताके सम्मुख अपनेको छोटा बनाकर
मांगनेका कष्ट तू भी जानता है स्वामी !
मुझे न मांगने जैसा कर रे तू
मेरे श्री पुरंदर विठल ।।१८।।

× × ×

ध्वज रेखांकित हरि पादांबुज
सतत सेवित भागवतका भाग्य देख
त्रिजग-वंद्यको गा उससे भक्ति मांग
कूजन वार्ता जलाकर दुर्जन संग छोड़

गजेन्द्र-वरद श्री कृष्णका स्मरण
कर रे तू श्री पुरंदर विठल ॥१९॥

× × ×

हरि तू प्रसन्न हो ऐसा कर
प्रसन्न हो तो भिक्षामें भटकने जैसा कर
भटकने पर भी कोई भिक्षान्न न दे ऐसा कर
किसीने दिया तो पेट न भरने जैसा कर
उदर पूर्ति हुई तो वसन न मिलना-सा कर
वसन मिला तो शयनमें स्थान न मिलना-सा कर
स्थान न मिला तब अपने पाद पद्ममें सदा
स्थान दे रक्षा कर मेरे पुरंदर विठल ॥२०॥

× × ×

परम पिता तू लाया मै आया
काममें लाया तू क्रोधमें लाया
एक नहीं दो नहीं तीन-चार नहीं
चौरासी लाख योनीमें तू लाया मै आया
बीतीको जाने दे आगे तू मेरी
सुध ले रक्षा कर हे पुरंदर विठल ॥२१॥

× × ×

अणु रेणु तृण काष्ठमें परिपूर्ण रत
गुणवंत तेरी महिमा-महात्म्य
गणना कर कौन देख सकता प्रभु
एणाक्षि श्री देवी ज्ञान सगुण तत्व
वेणु गोपाल दिखा अपनी महिमा
प्राणांतर्गत श्री पुरंदर विठल मेरे ॥२२॥

× × ×

मुझे पार लगाना तेरा भार है
तेरे स्मरण करना मेरा व्यापार है
सती सुतादिकोंकी तू ही गति है
सकल सर्वस्व अर्पण मेरी नीति है

गोदमें लेकर मुझे पालना है तव धर्म
तेरे ही चरणोंमें रहना है मम कर्म
मेरी भूलोंको गिनना तव कार्य नहीं
तुझे भूल कर रहना मेरा धर्म नहीं
तेरे बिना कौन गति है मेरी पुरंदर विठल ॥२३॥

× × ×

वृक्ष हो तो क्या जिसकी छाया नहीं
छाया हो तो क्या जिसके पास पानी नहीं
पानी हो तो क्या जो शुद्ध नहीं
धन हो तो क्या देनेको मन जो नहीं
मन हो तो क्या साथ ज्ञान नहीं
स्वामी पुरंदर विठल राया वह
जीवन ही क्या जिसमें कर्म नहीं ॥२४॥

× × ×

तेरे नाम भण्डारका चोर हूं मैं
अपनी भक्तिकी शृंखलाओंसे बांध कर
अपने दासोंके आधीन कर तू मुझे
अपनी मुद्रिकाओंसे दाग-दागकर
बैकुंठमें मुझे बंदी बना कर
रक्षा करो मेरी पुरंदर विठल ॥२५॥

× × ×

चांडाल आएगा मान कर घरके भीतर बैठ
घण-घणा घंटा बजा कर तू पूजा करता है रे ?
तेरे ही मनमें जो बसा हुआ क्रोध
चांडाल नहीं तो और है कौन रे ?
तेरे ही हियमें जो वंचना छिपी सदा
चांडाल नहीं तो और है कौन रे ?
बाहरके चांडालको हियमें बिठा कर तू
पूजा करना कैसा पुरंदर विठल ॥२६॥

× × ×

अणु होना जानता है महत होना जानता है
अणु महत दोनों एक होना जानता है
रूप होना जानता है अरूप होना जानता है
रूप अरूप दोनों एक होना जानता है
सगुण होना जानता है निरगुण होना जानता है
सगुण निरगुण दोनों एक होना जानता है
व्यक्त होना जानता है अव्यक्त होना जानता है
व्यक्त अव्यक्त दोनों एक होना जानता है
अघटित घटित अचित्याद्भुत मेरा
स्वगत स्वरूप है पुरंदर विठल ।।२७।।

× × ×

अपने आपको ना जानने वाला ज्ञानी कैसा रे
स्वामी श्री पुरंदर विठलको न स्मरने वाला
संन्यासी हो तो क्या रे और षंढ हो तो क्या ।।२८।।

× ×

पर्वत-प्राय दुःख कष्ट राशि-राशिको
रामकृष्ण हरि नामकी चिनगारीसे जलते देखा
अरी-अरी दुरित बाधा ग्रह बाधा मुड़ कर भी ना देखो
दुवारा देखा तो भस्म कर देगा मेरा पुरंदर विठल ।।२९।।

× × ×

अरे मना ! तू गाएगा सो कर तो वह सुनेगा बैठ कर
तू बैठ कर गाएगा तो वह सुनेगा खड़ा-खड़ा
तू गाएगा खड़ा होकर तब वह नाचेगा, नाचेगा
यदि तू नाच कर गाएगा तो प्रेमसे
वह लुटा देगा मोक्ष धाम बैकुण्ठ परम
भक्त वत्सल कृपानिधि पुरंदर विठल ।।३०।।

× × ×

तेरा ध्यान दे रे मुझे धन्य कर रे
पन्नग शयन श्री पुरंदर विठल
अंबुज नयना अंबुज जनक
अंबुज नाभ श्री पुरंदर विठल

पंकज नयन पंकज जनक
पंकज नाभ श्री पुरंदर विठल
भागीरथी पित भागवत प्रिय
योगी-योगेश्वर पुरंदर विठल ॥३१॥

× × ×

तेरे अंगुष्टसे ब्रह्मांड भंग हुआ
तेरे चलनेमें हुआ विश्व दो पाद
तेरी नाभीने पद्मासनको जन्म दिया
तेरा हृदय आसरा बना वर लक्ष्मीका
तेरे आलिंगनके बाहु-पाशमें रत हुई भू देवी
तेरी तुतलाती वाणीसे उदय हुए वे वेद पावन
तेरे कटाक्ष मात्रसे मिला चैतन्य जीव-राशीको
मैं क्या गाऊं तव अवयवोंका महिमा स्तवन
तू है महा महिम, तेरा कण-कण है महा महिम
अप्रतिम, अप्रमेय, परम पुनीत अपार महिम
नमो-नमो श्री पुरंदर विठल ॥३२॥

श्री पुरंदर सुभाषित

पुरंदर सुभाषित

१. अनाथ का बन्धु जगन्नाथ ।

२. अनुताप रतका हृदयका दान देना ।

३. अपने को जान लिया कि हाथ में मुक्ति ।

४. आत्म भाव जान लिया कुल का बंधन छुटा ।

५. ईख टेढ़ा हो तो क्या उसका रस भी टेढ़ा है ?

६. उदर-वैराग्य

७. उलूक जाने क्या दिवागमन सुख को ?

८. काक क्या जाने कोयल के पंचम स्वर को ।

९. काम हीन और गंगा स्नान ।

१०. गंगा में रह कर भी मगर मुक्त नहीं होता ।

११. गंगा के तह में भी माटी ।

१२. गाय काली हो तो क्या उसका दूध काला होता है ?

१३. गूंगा अपने स्वप्नानंद को कैसे कहेगा ?

१४. घाम से बचने पेड़ की साया में गया तो पेड़ ही सिर पर पड़ा ।

१५. चींटियाँ आग को घेर कर आग का क्या बिगाड़ेंगी ?

१६. जग में सर्वत्र चिंता ही चिंता ।

१७. जीवन भर माटी खाना और मरकर माटी में मिलना ।

१८. जूं सुमन-सौरभ क्या जाने ?

१९. ज्ञान दान बिना गुरु व्यर्थ है ।

२०. ज्ञानी का क्या कुल ?

२१. टोले में सूअर हो तो टोला साफ रहता है ।

२२. ढोई हुई कस्तूरी की सुगंध क्या गदहा जानता है ?

२३. त्रिभुवन में बिना चिन्ता के कुछ नहीं है ।

२४. दर्पण में देखे हुए धनके लिए सेंध लगाना।
२५. दुष्टों के कार्य से शिष्टों का नाम अमर होता है।
२६. दूध में पड़ा पानी भी दूध ही कहलाता है।
२७. धनुरूप रहना है ज्ञानियों में।
२८. धनुष्य टेढ़ा हो तो क्या उसका बाण टेढ़ा होता है ?
२९. धूल में घोड़ा नाचा तो सूरज पर धूल नहीं उड़ेगी।
३०. नदी टेढ़ी हो तो क्या उसका पानी टेढ़ा होता है ?
३१. नर चित्त में मिष्ठान्न तो हरि चित्त में उपवास।
३२. नर चित्त पालकी में चलता है तो हरि चित्त पैदल दौड़ाता है।
३३. निंदक की चरण वंदना करो।
३४. नीम गुड़ में रख कर क्या लाभ ?
३५. पापी को पुण्य का अवसर देना धर्म है।
३६. पुत्र मित्र है शरीर के।
३७. प्यास के मारे कुएं पर गये तो कुआं ही सूखा।
३८. बहरा क्या जाने एकांत की बात ?
३९. बिना आदर दिया अमृतान्न भी व्यर्थ।
४०. बिना सत्य कथन के प्रवचन और बिना ज्ञान दिए गुरु कैसा ?
४१. बिना वेदाध्ययन के ब्राह्मण व्यर्थ।
४२. भक्तवत्सल कहलाने पर भक्त के अधीन रहना पड़ता है।
४३. भूमि का भार और अन्न का संहार।
४४. मर्कट क्या जाने माणिक्य-मणि मूल्य ?
४५. मटका बनाने के बाद माटी माटी नहीं रहती।
४६. मटका टूटा तो एक ही पैसा।
४७. मल को धोना जानते हैं मन को नहीं।
४८. माटी की काया और माटी की माया।
४९. मीन को पानी का क्या स्वाद ?
५०. मृत्यु समय नहीं देखती।

५१. वंदन करने वाला पुण्य खा जाता है और निंदा करने वाला पाप खा जाता है ।

५२. वधिक शत्रु को मित्रता का मधु दो ।

५३. विष देने वाले को अमृत देते रहो ।

५४. शंकर का कैलास भी माटी और विष्णु का बैकुंठ भी माटी ।

५५. शरण का राम ही अशरण का यम है ।

५६. श्वान क्या जाने रागों के भेद को ?

५७. सांप टेढ़ा हो तो उसका विष टेढ़ा होता है ?

५८. हरि दर्शन के बिना नयन व्यर्थ ।

५९. हरि स्मरण ही निश्चित है ।

६०. हरि का स्मरणमात्र मोक्षार्थ ।